हिन्दी चेतना

हिन्दी प्रचारिणी सभा: (कैनेडा) की अन्तर्राष्ट्रीय त्रैमासिक पत्रिका
Hindi Chetna: International quarterly magazine of Hindi Pracharini Sabha, Canada
वर्ष १६, अंक ६१, जनवरी २०१४ • Year 16, Issue 61, January 2014

संरक्षक एवं प्रमुख सम्पादक
श्याम त्रिपाठी
कैनेडा

सम्पादक
सुधा ओम ढींगरा
अमेरिका

सह-सम्पादक
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', भारत
पंकज सुबीर, भारत
अभिनव शुक्ल, अमेरिका

परामर्श मंडल
पदमश्री विजय चोपड़ा, भारत
कमल किशोर गोयनका, भारत
पूर्णिमा वर्मन, शारजाह
पुष्पिता अवस्थी, नीदरलैंड
निर्मला आदेश, कैनेडा
विजय माथुर, कैनेडा

सहयोगी
सरोज सोनी, कैनेडा
राज महेश्वरी, कैनेडा
श्रीनाथ द्विवेदी, कैनेडा

विदेश प्रतिनिधि
डॉ. एम. फ़िरोज़ ख़ान, भारत
चाँद शुक्ला 'हदियाबादी', डेनमार्क
अनीता शर्मा, शिंघाई, चीन
दीपक 'मशाल', फ्रांस
अनुपमा सिंह, मस्कट
रमा शर्मा, जापान

वित्तीय सहयोगी
अश्विनी कुमार भारद्वाज, कैनेडा

रेखाचित्र : पारस दासोत
आवरण : अरविंद नारले

डिज़ायनिंग :
सनी गोस्वामी, सीहोर
शहरयार अमजद ख़ान, सीहोर

हिन्दी चेतना

(हिन्दी प्रचारिणी सभा कैनेडा की त्रैमासिक पत्रिका)
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001
वर्ष : १६, अंक : ६१
जनवरी-मार्च २०१४
मूल्य : ५ डॉलर ($5)

वर्ष है नूतन, हर्ष है नूतन, नूतन है उजियार,
शीतल पवन, सुनहरी किरणें, मौसम का श्रृंगार,
नई चेतना, नई उमंगें, नए-नए विस्तार,
नई-नई गलियों में अपनी भाषा की झंकार।
-अभिनव शुक्ल

HINDI CHETNA

6 Larksmere Court, Markham Ontario, L3R 3R1
Phone : (905) 475-7165, Fax : (905) 475-8667
e-mail : hindichetna@yahoo.ca
Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna
ID No. 84016 0410 RR0001

Hindi Chetna is a literary magazine published quarterly in Toronto, Ontario under the editorship of Mr. ShiamTripathi. Hindi Chetna aims to promote the Hindi language, Indian culture and the rich heritage of India to our children growing in the Canadian society. It focuses on Hindi Literature and encourages creative writers, young and old, in North America to write for the magazine. It serves to keep readers in touch with new trends in modern writing. Hindi Chetna has provided a forum for Hindi writers, poets, and readers to maintain communication with each other through the magazine. It has brought local and international writers together to foster the spirit of friendship and harmony.

इस अंक में

सम्पादकीय 4
उद्‌गार 5
साक्षात्कार
सुषम बेदी 8
कहानी
फ्लॉरिस्ट
पुष्पा सक्सेना 12
पीला रंग आशा का
उषादेवी कोल्हटकर 18
पैरासाइट
फ़राह सईद 21
पहली कहानी
दिलासों की छाँव में
रचना आभा 31
लघुकथाएँ
सहानुभूति
सीमा स्मृति 11
अपनी ही मूर्त्ति
राजेन्द्र यादव 29
ये लोग
उर्मि कृष्ण 55
व्यंग्य
बड़ा लुत्फ था जब...
अशोक मिश्र 27
अमरीका
संजय झाला 28
विश्व के आँचल से
नातूर: एक अंतर्पाठ 30
साधना अग्रवाल
संस्मरण
कमला बाई
ललित शर्मा 33
दृष्टिकोण
स्त्रियों के हिस्से में
डॉ. जेन्नी शबनम 37
आलेख
वैष्णव नाट्य परंपरा
कुमार गौरव मिश्रा 39
कविताएँ
अनिता ललित 43
मृदुला प्रधान 44
संतोष सावन 45
पंखुरी सिन्हा 46
शैफाली गुप्ता 47
हाइकु
डॉ. भगवत शरण अग्रवाल 48
ताँका
डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा 48
माहिया
अनुपमा त्रिपाठी 48
क्षणिकाएँ
मंजु मिश्रा 49
भाषांतर
चेस्वाव मिवोश की कविताएँ
अनुवादक: महाभूत चन्दन राय 50
नव वर्ष गीत
नरेन्द्र कुमार सिन्हा 51
अविस्मरणीय
श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' 51
ग़ज़ल
रमेश तैलंग 52
अखिलेश तिवारी 52
अशोक मिज़ाज 52
नव अंकुर
दीपक शर्मा 49
ओरियानी के नीचे
उत्तर-आधुनिक नारीवाद
डॉ. रेनू यादव 54
पुस्तक समीक्षा
ज्यों ज्यों बूड़ें श्याम रंग
राजेंद्र सहगल 56
कमरा नंबर 103
निरुपमा कपूर 59
लक्ष्य
नरेंद्र पुण्डरीक 60
उन्मेष
भारतेंदु श्रीवास्तव 60
हमसफ़र पत्रिकाएँ 61
पुस्तकें 62
चित्र काव्य शाला 63
विलोम चित्रकाव्यशाला 63
साहित्यिक समाचार 64
आख़िरी पन्ना
सुधा ओम ढींगरा 65

हिन्दी चेतना को पढ़िये, पता है :
http://hindi-chetna.blogspot.com
हिन्दी चेतना को आप ऑनलाइन भी पढ़ सकते हैं :
Visit our Web Site :
http://www.vibhom.com/hindichetna.html
हिन्दी चेतना का सदस्यता फार्म यहाँ उपलब्ध है
http://www.shabdankan.com
http://www.vibhom.com/hindichetna.html

'हिन्दी चेतना' सभी लेखकों का स्वागत करती है कि आप अपनी रचनाएँ प्रकाशन हेतु हमें भेजें । सम्पादकीय मण्डल की इच्छा है कि 'हिन्दी चेतना' साहित्य की एक पूर्ण रूप से संतुलित पत्रिका हो, अर्थात साहित्य के सभी पक्षों का संतुलन । एक साहित्यिक पत्रिका में आलेख, कविता और कहानियों का उचित संतुलन होना आवश्यक है, ताकि हर वर्ग के पाठक वर्ग पढ़ने का आनंद प्राप्त कर सकें । इसीलिए हम सभी लेखकों को आमंत्रित करते हैं कि हमें अपनी मौलिक रचनाएँ ही भेजें । अगले अंक के लिए अपनी रचनाएँ शीघ्रातिशीघ्र भेज दें । अपना चित्र भी साथ अवश्य भेजें ।

रचनाएँ भेजते समय निम्नलिखित नियमों का ध्यान रखें :

- हिन्दी चेतना जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर में प्रकाशित होगी ।
- प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा ।
- पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर लिखित रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी ।
- रचना के स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा ।
- प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा ।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं ।
संपादक मंडल तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है ।

विदेशों में हम हिन्दी की पताका गर्व से सीना तानकर फहरा रहे हैं, तो भारत में क्यों नहीं ?

वर्षों से विदेश में रह रहा हूँ, पर भारत से प्रेम कम नहीं हुआ। जब-जब भारत पर कोई दैवी आपदा या संकट आया; विनम्रता से कहना चाहता हूँ कि दिल खोलकर सहायता की और सक्रिय भाग लिया। हाँ, वहाँ की राजनीति में कभी रुचि नहीं रही। कोई नेता देश के लिए नहीं सोचता; इसीलिए मैंने जीवन के प्रारम्भ से ही ''कोउ नृप होउ हमहि का हानी, चेरि छाड़ि अब होब कि रानी।'' की नीति अपनाई। ऐसी बात नहीं कि यहाँ के राजनीतिज्ञ और राजनीति दूध की धुली है, सत्ता मिलने पर उत्तरी अमेरिका के नेता जनता और देश को बिसराते नहीं। वे उनके लिए प्राथमिक और महत्त्वपूर्ण रहते हैं।

किन्तु जब कभी कोई नेता हिन्दी भाषा के हित की बात करता है, तो मुझे एक नई प्रेरणा मिलती है। अभी भारत के 5 प्रान्तों में एसेम्बली चुनाव हुए और पार्टियों ने अपने संघोषणापत्र और भाषण अंग्रेज़ी में दिए। भारत की अधिकांश जनता अभी भी निरक्षर है और फिर जहाँ तक अंग्रेज़ी का प्रश्न है, वह जन-मन की भाषा नहीं बन पाई है। समाजवादी पार्टी के नेता, भूतपूर्व मुख्य मंत्री श्री मुलायम सिंह यादव ने विरोध व्यक्त करते हुए एक वक्तव्य में ज़ोरदार शब्दों में सभी राजनैतिक दलों को कहा कि यदि वे भारत के आम आदमी से वोट माँगते हैं, तो उन्हें अपनी बात हिन्दी भाषा में ही कहनी चाहिए और उन्होंने हिन्दी का पूर्णरूप से समर्थन किया। आपने बड़े उत्साहपूर्वक हिन्दी के सम्मान में इसे जनता का प्रतीक बताया और कहा कि यह आम जनता की भाषा है।

मैं श्री मुलायम सिंह यादव के इस विचार से अत्यंत प्रसन्न हुआ कि यदि देश की सभी पार्टियाँ इस बात पर गम्भीरता से विचार करें और इस पर अमल करें तो निश्चय ही हिन्दी का भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। वोटर को अपने मत के निर्णय में अपनी भाषा बहुत सहायक हो सकती है। श्री मुलायम सिंह यादव के इस विचार से हिन्दी भाषा के प्रति एक आशा की किरण दिखाई दी है। पाठक इससे निष्कर्ष न निकालें कि मैं किसी राजनीतिक पार्टी का समर्थक हूँ। मैं अच्छे और उत्तम विचारों का हमेशा स्वागत करता हूँ; वे मुझे कहीं से भी प्राप्त हों।

नि:संदेह भारत के अनेकों क्षेत्रों में हम हिन्दी के प्रति उत्साह की भावना भी देखते हैं। सोनी चैनल पर अदालत और क्राइम पेट्रोल में अच्छी हिन्दी बोली जाती है। कामना है कि राजनीति के गलियारों में हिन्दी के प्रति अनुराग बढ़ जाए, तो हिन्दी की दशा सुधर सकती है। आज देश में परिवर्तन की लहर उठ रही है। शायद यह परिवर्तन हिन्दी के प्रति भी सार्थक परिणाम लाए। मुझे उस दिन की प्रतीक्षा है; जब भारत में हर भारतवासी अपनी मातृभाषा हिन्दी पर गर्व करेगा। विदेशों में हम हिन्दी की पताका गर्व से सीना तानकर फहरा रहे हैं, तो भारत में क्यों नहीं ?

वर्ष 2013, अक्टूबर-दिसम्बर विशेषांक 'नई सदी का कथा साहित्य' के साथ सम्पन्न हो गया। यह विशेषांक बहुत सराहा गया। मैं 'हिन्दी चेतना' परिवार की ओर से सभी लेखकों, पाठकों, सदस्यों तथा विज्ञापन दाताओं को नव वर्ष की मंगल कामनाएँ देता हूँ। आप सभी लोग इसी प्रकार 'हिन्दी चेतना' को अपना योगदान और सहयोग देते रहें। हिन्दी चेतना नव वर्ष के साथ ही अपने सोलहवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। हार्दिक धन्यवाद!

आपका,

श्याम त्रिपाठी

विशिष्ट पत्र
सुसम्पादित सुविचारित विशेषांक

'हिन्दी चेतना' त्रैमासिक पत्रिका की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि बिना अतिरिक्त कोलाहल के इसने पाठकों को उत्कृष्ट सामग्री प्रदान की है। शब्द की सार्थक और शालीन संस्कृति को 'हिन्दी चेतना' वैश्विक परिदृश्य में आगे बढ़ा रही है।

अक्टूबर 2013 अंक 'नई सदी का कथा समय' पर केन्द्रित है। इसके अतिथि सम्पादक हैं; चर्चित युवा कथाकार पंकज सुबीर। सबसे पहले बधाई सुधा ओम ढींगरा को, जिन्होंने विषय के अनुकूल व्यक्ति को इस विशेषांक की ज़िम्मेदारी दी। सुधा स्वयं एक निष्णात सम्पादक हैं। उन्होंने कई बार इस तथ्य को प्रमाणित किया है। उनको एहसास था कि नई सदी के कथा समय में पंकज सुबीर की रचनात्मक सक्रियताओं ने एक इतिहास बनाया है। 'ये वो सहर तो नहीं' उपन्यास को नई सदी के युवा लेखन में एक मील का पत्थर माना जाता है। उनकी कहानियाँ पाठकों और आलोचकों के बीच समान समादृत हैं। लेखक के रूप में सार्थकता सिद्ध करने के बाद 'हिन्दी चेतना' के इस अंक से पंकज ने अपने सम्पादकीय कौशल का भी परिचय दिया है। साक्षात्कार, आलेख, चयनित कहानी, परिचर्चा, पसंद लेखकों की, पसंद आलोचकों की आदि के जरिए इस कथा समय को बूझने का सफल उपक्रम है। प्रवासी रचनाकार एक गोलमेज़ परिचर्चा अत्यंत रोचक व विचारोत्तेजक है। प्रवासी रचनाकारों की रीझ और खीझ स्पष्ट है। इस परिचर्चा को आधार बनाकर एक लेख लिखने जा रहा हूँ। तेजेन्द्र शर्मा का लेख महत्त्वपूर्ण है। 'आग में गर्मी कम क्यों है' (सुधा ओम ढींगरा) पर अंकित जोशी का लेख कहानी का मर्म खोलता है। यह सुधा की श्रेष्ठ कहानियों में एक है। उनकी एक अन्य बेहतरीन कहानी 'दूसरी परम्परा' के अंक 2 में छपी है। अर्चना पैन्यूली ने सही कहा कि भाषा का वैश्वीकरण हो रहा है। वर्ष 2000 के बाद कुछ युवा कहानीकारों की प्रेम कहानियों पर विमल चन्द्र पाण्डेय का लेख मुझे बहुत अच्छा लगा। विवेक मिश्र द्वारा संयोजित परिचर्चा में व्यक्त विचारों से तो युवा कहानी का मुकम्मल मानचित्र बन जाता है। वैभव सिंह का लेख सुचिन्तित है। गौतम राजरिशी ने जिन कहानीकारों को चुना है उनमें दो नाम कम हो सकते हैं और दो जोड़े जा सकते हैं। ख़ैर... यह निजी रुचि और उपलब्धता की बात भी है। उन्होंने आखिर में लिखा है '...जिस ऊँचे सिंहासन पर हम पाठकों ने इन्हें बिठा रखा है, उस से नीचे उतार देने की निर्दयता दिखाने में दरअसल इन्हीं पाठकों को ज़रा भी विलंब नहीं लगेगा...।' दरअसल जब लेखक हत्यारा हो जाता है; तब पाठक भी निर्दय हो जाते हैं, यह बात समझ लेनी चाहिए!

पंकज सुबीर का सम्पादकीय समय का सही मूल्यांकन करता है। 'आख़िरी पन्ना' पर सुधा ओम ढींगरा ने कुछ ज़रूरी बातें कही हैं। जैसे '...भारत से इतर देशों से लेखकों की एक जमात पाठकों के सामने आई। इन लेखकों ने अपने नए भावबोध, सरोकारों, संवेदनाओं, बेचैनी और कथ्यों के साथ हिन्दी साहित्य के द्वार पर दस्तक दी।'

समग्रत: पंकज सुबीर के शानदार सम्पादन में 'हिन्दी चेतना' का यह अंक सँजोकर रखना चाहूँगा। जब कभी नई सदी के कथा समय पर बात होगी तब यह अंक काम आएगा। कुछ इस तरह-

'ज़िक्र होता है जब क़यामत का तेरे जल्वों की बात होती है।'

अनुज पंकज सुबीर...शाबाश!

-सुशील सिद्धार्थ
(सम्पादक दूसरी परम्परा)

कुबेर का खज़ाना

8 सितम्बर 2013 को सेमीनार में आप से भेंट हुई थी और आपने मुझे सहृदय हिन्दी चेतना का जुलाई अंक दिया था। यद्यपि मैंने पत्रिका पढ़ ली थी लेकिन मैं शीघ्र इस बारे में लिख नहीं सका - क्षमा प्रार्थी हूँ। वास्तविकता यह है कि आपने पत्रिका क्या दी ऐसा लगा जैसे आपने कुबेर का खज़ाना दे दिया हो। पत्रिका में क्या नहीं है - कहानी, कविता, संस्मरण, ग़ज़लें, अपनी भाषा से और दूसरी भाषा से, पुराने भी जैसे महादेवी वर्मा और नए भी, व्यंग्य भी और निबन्ध भी, रिपोर्ताज भी और डायरी भी और साक्षात्कार भी- सभी कुछ एक स्थान पर।

विकेश निझावन जी का संस्मरण अत्यंत मार्मिक था। उनसे अस्सी के दशक से मुलाक़ात हुई थी -जब मैं आकाशवाणी रोहतक पर कार्यक्रम अधिकारी था। अब काफी समय से मिले नहीं। बलराम अग्रवाल जी की कहानी 'कोख' हृदय स्पर्शी थी; लेकिन इस को आधुनिक प्रणाली के सन्दर्भ में अधिक सुखांत किया जा सकता था- यह एक निवेदन है कहानीकार महोदय इसे अन्यथा ना लें। एक सीधा सादा कबीर कितना बड़ा दार्शनिक था; यह डॉ. शुगुफ्ता नियाज़ के लेख से स्पष्ट होता है। उन्हें धन्यवाद। पत्रिका के लिए बहुत आभारी हूँ। इस समय मुझे याद आ गई दिल्ली की लेखिका डॉ. हेम भटनागर ने एक पुस्तक लिखी थी 'नौबत बाजे' उन्होंने मुझे समीक्षा के लिए दी। यह एक कठिन कार्य था; लेकिन उस में कबीर का एक नया रूप देखा था। उन्होंने कबीर के पदों को सोदाहरण शास्त्रीय रागों पर आधारित दिखाया था और मूर्धन्य कलाकार स्व. कुमार गंधर्व के स्वर में दी गयी बंदिशों के साथ प्रस्तुत किया था। कितने आयाम थे इस व्यक्ति के जिस ने - मसि कागद छुयो नहि कलम गह्यो नहि हाथ।

-बी. एन. गोयल

0

वैश्विक विस्तार और आदर्श चिंतन

आपकी 'हिन्दी चेतना' पत्रिका हिन्दी में वैश्विक विस्तार और आदर्श चिंतन का राजपथ खोल रही है। हिन्दी कथा साहित्य के वर्तमान परिदृश्य के अनुप्रेरक विमर्श के सन्दर्भ में आशातीत सफलता के लिए हार्दिक शुभ कामनाएँ।

-प्रो. नरेश मिश्रा (हरियाणा)

रचनाकारों के समुच्चय का सामुहिक उद्घोष

'हिन्दी चेतना' पत्रिका के ५९ और ६० दो

अंक प्राप्त हुए। सलीकेदार संभ्रान्त दर्जे की उत्कृष्ट पत्रिका है; जिसमें भारतीयता की कुलीनता उद्भासित है। देवनागरी लिपि में छपे हुए अंक और वर्ष, साथ में हस्तलिपि में मुद्रित 'हिन्दी चेतना' नाम ने मेरे मन में न जाने कितनी बौद्धिक स्मृतियों को जाग्रत कर दिया। इसके लिए आभार।

हिन्दी प्रचारिणी सभा: (कैनेडा) हिन्दी चेतना के आवरण पृष्ठ पर देखकर मुझे काशी की 'हिन्दी प्रचारिणी सभा' और उसके न जाने कितने विशिष्ट अंक याद हो आए। इसी क्रम में भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी द्वारा सम्पादित पत्रिका के अंक उनका आवरण स्मृतियों में झिलमिलाने लगा और इसके साथ ही सूरीनाम में सातवें विश्व-हिन्दी सम्मलेन के आयोजन के दौरान 'हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य के नवजागरण काल' की प्रदर्शनी लगाते समय 'मर्यादा' के प्रवासी अंक, 'चाँद' के प्रवासी अंक, अभ्युदय, अछूत आधार, प्रेमा और भारतेन्दु जैसी पत्रिकाओं और पत्रों (साप्ताहिक अख़बारों) के अंक कौंध गए। जिसमें उनके प्रकाशन का अदम्य उत्साह और विपरीत परिस्थितियों में संघर्ष की उद्दाम जिजीविषा का ताप भी स्पर्श करता रहा था। वैसी ही अनुभूति 'हिन्दी चेतना' के अंकों को अपनी हथेलियों में पाकर महसूस किया है कि वे ही हथेलियाँ आपको और आपकी हिन्दी चेतना को सम्बोधित करने के लिए रोमांचित हो उठी।

हिन्दी चेतना पत्रिका के पन्द्रह वर्ष और साठ अंकों की सार्थक यात्रा के लिए आत्मीयता पूर्ण बधाई। दरअसल, यह मात्र पत्रिका के ही पन्द्रह वर्ष या साठ अंक मात्र ही नहीं हैं बल्कि यह 'विश्व की हिन्दी-चेतना के रचनाकारों के समुच्चय का सामुहिक उद्घोष है; जिसमें भारतीय..प्रवासी भारतीय और भारतवंशी सबका अंतर्मन शामिल है।

हिन्दी चेतना पत्रिका में विश्व के हिन्दी भाषी साहित्यकारों की हिस्सेदारी के साथ-साथ विज्ञापनदाताओं के रूप में भारत और भारत से बाहर सच्चे हिंदी प्रेमियों का सहयोग लेकर अपनी तरह से 'हिन्दी चेतना परिवार' की शक्ति को जन्म दिया है-जो वैश्विक है और हिन्दी चेतना को वैश्विक बनाने में समर्थ हैं।

जब स्वैच्छिक और सरकारी तौर पर हिन्दी प्रेमी जन हिन्दी को विश्व श्रेणी का दर्जा देना चाहते हैं तो उन्हें हिन्दी को वैश्विक बनाने में सहयोग करना चाहिए। हिन्दी दिवस, विश्व हिन्दी दिवस और विश्व हिन्दी सम्मलेनादि इसी दिशा में बढ़ते हुए कुछ क़दमों का नमूना भर है; जिसमें बिना किसी पूर्वग्रह के भारतीय हिन्दी साहित्यकार-प्रवासी भारतीय और भारतवंशियों के साथ सोत्साह एक ही मंच पर हिस्सा लेते हैं,विचार-विमर्श करते है। उस समय वे हिन्दी भाषा, उसके साहित्य, उसकी समस्याओं और चुनौतियों पर विचार विमर्श करते हैं-न कि उनके प्रवास और नागरिकता के प्रश्न पर। विश्व हिन्दी सचिवालय की परिकल्पना छठे-सातवें विश्व हिन्दी सम्मेलनों की सम्मिलित पुकार का ही प्रतिफल है। ऐसे में हिंदी साहित्य लेखन को भारतीय, प्रवासी भारतीय और भारतवंशी के विभाजन की भेदनीति से परखना अन्याय होगा। रचनाएँ किसी भी देश की धरती पर रहते हुए ही वे क्यों न लिखी जाएँ, पर वे अपनी रचनात्मकता में सार्वकालिक होती हैं-सेंट लूशिया के नोबल पुरस्कार विजेता कवि डेरक वालकॉट वर्षों से न्यूयार्क में रहते हैं। पर उनके नाम का पार्क और मूर्ति सेंट लूशिया की राजधानी में प्रमुख केन्द्र स्थल पर निर्मित है। वी. एस. नायपॉल जी दीर्घ समय से इंग्लैण्ड में रहते हैं, पर वे ट्रिनीडाड के साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं। हम हिन्दी वालों को इन विरोधाभासों से विमुख होने की आवश्कता है।

किसी भी साहित्य में देशकाल की विभिन्नता होने के बावजूद उसमें सार्वदेशिकता का अद्भुत गुण सन्निविष्ट रहता है, इसलिए किसी भी देश, समाज में रह कर, किसी भी हिन्दी-भाषी भारतीय (वह प्रवासी हो या भारतवंशी) द्वारा लिखी जाने वाली रचना, वह हिन्दी साहित्य की मूल्यवान धरोहर है। उसके महत्त्वांकान का निकष उसकी रचनात्मक गुणवत्ता है; जिसके लिए किसी तरह के आरक्षण या विशेष अनुशंसा की कोई आवश्कता नहीं है।

साठवें अंक के आख़िरी पृष्ठ की चिन्तक सुधा जी से मैं पूर्णरूपेण सहमत हूँ। हम सब चाहें जहाँ भी रहें-पीढ़ियों से भारत माँ की सन्तानें हैं। हमारी संस्कृति की धमनियों में भारतीय दर्शन, कला और संस्कृति का रक्त प्रवाहित है। प्रवासी भारतीय और भारतवंशी ससुराल गई हुई बेटियाँ सरीखें हैं। वह पराई होकर भी पराई नहीं हो पाती है। उनकी चेतना से माँ का घर-मातृभूमि की तरह कभी नहीं बिसर पाता है। ऐसे ही प्रवासी भारतीय और भारतवंशी के चित्त की अटेरन से कभी भारतीय चेतना और संस्कृति उतर नहीं पाती है। विदेशों में होने पर भी हम विदेशी नहीं हो पाते हैं फिर जब हम सबकी अभिव्यक्ति की आधार और मूलभाषा हिन्दी है तो प्रवासी, विदेशी या भारतवंशी के रूप में सम्बोधित किये जाने का कोई औचित्य नहीं बनता है और न ही उनके साहित्य को समुद्र पार दृष्टि से परखने का कोई मतलन नहीं है, अगर है तो सिर्फ इतना ही-कि विश्व के हिन्दी भाषी किसी भी साहित्यकार के द्वारा जो भी रचा जा रहा है, उसमें से 'सार-सार को गहि लेह, थोथा दई उड़ाय' की दृष्टि ही रखनी चाहिए। साहित्य और भाषा का उपयोग 'ना काहू से दोस्ती, ना काहू से बैर' के निमित्त सार्थक ढंग से करना चाहिए।

प्रो. पुष्पिता अवस्थी
(निदेशक)
हिन्दी यूनिवर्स फाउंडेशन नीदरलैंड

0

यह विशेषांक 'पूर्ण' है

'हिन्दी चेतना' का विशेषांक 'नई सदी का कथा समय' देखकर अभिभूत हूँ। अपने अमरीका से ही इस स्तर की हिन्दी साहित्यिक पत्रिका! किस -किस को बधाई दूँ? शायद सभी को- सम्पादक मंडल, लेखक और सभी प्रतिभागियों को जिनके सहयोग से इतना प्रभावशाली और पूर्ण अंक बन पड़ा है।

निस्सन्देह इस अंक की चारों कहानियाँ उत्कृष्ट कोटि की हैं। इस अंक में जिस और बात ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया है, वह है सुशील सिद्धार्थ का साक्षात्कार और इस सदी की कथा- रचनाओं पर गौतम राजरिशी, मनीषा कुलश्रेष्ठ, वैभव सिंह, विमल चन्द्र पांडेय, अर्चना पैन्यूली और तेजेन्द्र शर्मा द्वारा लिखे आलेख। विवेक मिश्र द्वारा संयोजित भारतीय साहित्यकारों की और हिन्दी चेतना द्वारा संयोजित प्रवासी साहित्यकारों की परिचर्चा काफ़ी जीवन्त और रोचक लगी।

पत्रिका का यह विशेषांक न हुआ, मुझ जैसे

साहित्य-पिपासु के सामने जैसे किसी ने द्रौपदी का अक्षय पात्र परोस दिया हो। कहते हैं कुछ भी अपने आप में पूर्ण नहीं होता पर यह विशेषांक 'पूर्ण' है। हिन्दी चेतना का यह अंक पंकज सुबीर के अथक परिश्रम, सुनियोजना और निष्ठा का दस्तावेज़ है। हार्दिक बधाई, शुभकामनाएँ और मुझ जैसे साहित्य की अनंत क्षुधा रखने वालों को यह संग्रहणीय, मूल्यवान उपहार भेंट करने के लिए आभार।

-अनिलप्रभा कुमार (अमेरिका)

o

प्रवासी साहित्य की नई पड़ताल

हिन्दी चेतना का अक्टूबर अंक प्रवासी साहित्य की नई पड़ताल करते हुए इक्कीसवीं सदी के मुहाने पर खड़ी, जूझती, नई पहचान बनाती, नये आयाम खोजती हिंदी कहानी को खगालता है। राजनीतियाँ और गुटबन्दियाँ तो हर युग में रही और चलती रहेंगी। किन्तु दु:ख इस बात का है कि आज साहित्य को एक शतरंज के खेल की तरह खेला जा रहा है। यह रही मात और यह रही शह।

हिन्दी चेतना ने पहली बार हाशिए पर धकेले गये प्रवासी साहित्य की ओर समीक्षकों की मुड़ी हुई पीठ का रुख बदलने का मानो आदेश दे दिया है। अपने आख़िरी पन्ने में तो सुधा जी ने खुले आम ऐलान कर दिया है 'साथियों हक तो देना पड़ेगा और वैश्वीकरण के इस युग में वह दिन दूर नहीं।

'दस कहानियाँ नई सदी की' और 'गोलमेज़ परिचर्चा' जैसे नए शीर्षकों और सामग्री से पत्रिका को नई ऊँचाई मिली है। 'इक्कीसवीं सदी की प्रवासी कहानी' पर तेजेन्द्र शर्मा का आलेख प्रवासी साहित्य की गुणवत्ता की ओर एक प्रबल निर्देश देता है। अर्चना पेन्यूली द्वारा प्रवासी साहित्य की पड़ताल भी सार्थक बन पड़ी है।

सुशील सिद्धार्थ का साक्षात्कार उनके व्यक्तित्व के आयामों को खोलता है। किन्तु सभी आलेखों में प्रवासी साहित्य के प्रति एक उपेक्षा और नकार का भाव स्पष्ट है; जो निराश करता है। इस अंक की सब से सशक्त कहानी लगी 'अति सूधो स्नेह को ..' लेखिका को बधाई। हिन्दी चेतना दिन पर दिन नई दिशाएँ ढूँढ रही है और ठीक दिशा में उस का बहाव है। सम्पादक मंडल को साधुवाद और विशेषत: अतिथि सम्पादक पंकज सुबीर की सूझ बूझ को। मुखपृष्ठ अपनी सादगी से आकर्षित करता है। ढेर सारी शुभकामनाओं के साथ

-सुदर्शन प्रियदर्शिनी (अमेरिका)

o

बधाई स्वीकारें

'हिन्दी चेतना' का कथा समय विशेषांक मिला। हमारे समय के सभी प्रतिष्ठित कहानीकार आलोचक यहाँ मौजूद हैं। सुशील सिद्धार्थ का इंटरव्यू अच्छा लगा। दो टूक बातें उन्होंने कही हैं। इस बहाने प्रवासी लेखकों पर विशेष रोशनी पड़ी है, यह अच्छी बात है। बधाई स्वीकारें।

-ओम निश्चल (दिल्ली)

o

यह अंक एक कीर्तिमान है

'हिन्दी चेतना' का नई सदी का कथा समय विशेषांक मिला। मेरे लिए इस विशेषांक से गुज़रना एक सुखद अनुभव रहा। यह 'हिन्दी चेतना' के अब तक के अंकों में सर्वश्रेष्ठ है- सम्पादकीय सरोकार, विषय वस्तु और उसकी व्यापकता इक्कीसवीं सदी की कहानियों तथा प्रवासी कहानीकारों की रचनाओं एवं अधिकतम लेखकों के सहयोग की दृष्टि से। पत्रिका का सम्पादकीय और आख़िरी पन्ना ने सबसे पहले मेरा ध्यान आकर्षित किया। श्री श्याम त्रिपाठी का सम्पादकीय इक्कीसवीं सदी के वैश्विक साहित्य और प्रवासी कहानी साहित्य पर उनके विचार स्वागत-योग्य हैं। नई सदी ने जीवन और साहित्य सभी क्षेत्रों में चिंताजनक परिवर्तन किया है और भारत में हम इसका अनुभव कर रहे हैं। मनुष्यता, संवेदना, पारस्परिक मधुरता आदि संकट में हैं। साहित्य को इनसे लड़ना होगा। प्रवासी कहानीकारों ने नई वस्तु, परिवेश, जीवन- दृष्टि, भाषा आदि दी हैं और अब उनके स्वतन्त्र आस्तित्व को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। डॉ. सुधा ओम ढींगरा ने भी वैश्विकरण, प्रवासी साहित्य, अंतर्जाल आदि के प्रश्न को उठाकर प्रवासी साहित्य के हक की बात भी रखी है। मैं इस सम्बंध में इतना ही कहूँगा कि मैं सुधा जी के विचारों से सहमत हूँ और कहना चाहता हूँ कि प्रवासी साहित्य को उसका अधिकार और स्थान मिलना शुरू हो चुका है और वह अपनी स्वतन्त्र सत्ता के साथ मुख्य धारा का अंग है। हिंदी के प्रवासी लेखकों ने विगत दो दशकों से जिस प्रकार का साहित्य दिया है, अब उस पर कोई कमज़ोर साहित्य होने का लांछन नहीं लगा सकता।

इस अंक की कल्पना और संयोजन, विषय-वस्तु का वैविध्य सभी कुछ अनोखा और अनुपम है। सम्पादकों ने इक्कीसवीं सदी के 12- 13 वर्षों को केंद्र में रखकर कहानी, आलेख, साक्षात्कार, परिचर्चा आदि विभिन्न विधाओं के माध्यम सर्वथा नई तथा महत्त्वपूर्ण सामग्री दी है। इसमें 13 सर्वश्रेष्ठ कहानीकारों तथा 10 श्रेष्ठ कहानियों का चयन, एक गोलमेज़ परिचर्चा तो बेहद मौलिक साहित्यिक उपक्रम है। इसमें सम्पादकों की सूझ- बूझ तथा संयोजकों की दृष्टि और परिश्रम से महत्त्वपूर्ण सामग्री सामने आई है। अंक में मनोज रूपड़ा, मंजुलिका पाण्डेय, सुधा ओम ढींगरा तथा तेजेन्द्र शर्मा की कहानियाँ हैं; जो इस अंक की शोभा हैं और एक नये संवेदनात्मक संसार से हमारा साक्षात्कार कराती हैं। पत्रिका में शास्त्रीय एवं आलोचनात्मक सामग्री की तुलना में कहानियाँ कुछ कम हैं। यह अंक इस दृष्टि से भी विशेष उल्लेखनीय है कि 50 से अधिक लेखकों के विचारों, लेखों और कहानियों को पढ़ने का सुअवसर देता है। इससे समझा जा सकता है कि अतिथि संपादक पंकज सुबीर (सह संपादक -हिन्दी चेतना) ने कितना परिश्रम और कितनी निष्ठा से यह अंक निकाला है। यह अंक एक कीर्तिमान है और भारत की पत्रिकाओं के लिए एक मानक। हिंदी की प्रवासी कहानी को समझने तथा उसकी आत्मा को जानने के लिए इस विशेषांक को देखना-पढ़ना आवश्यक है। इस अंक ने प्रवासी साहित्य को और भी अधिक पुष्ट और समृद्ध बनाया है। उसने मुख्यधारा तक पहुँचने के लिए सेतु का निर्माण कर लिया है। मैं इस सेतु का स्वागत करता हूँ।

-डॉ. कमल किशोर गोयनका (दिल्ली)

o

भारत से बाहर हिन्दी साहित्य की लौ

'हिन्दी चेतना' का 'नई सदी का कथा समय' विशेषांक मुझे मिला। इसमें दो राय नहीं कि आपकी यह पत्रिका भारत से बाहर हिन्दी साहित्य की लौ जलाने में ऐतिहासिक योगदान दे रही है। देश के अंदर ऐसी अनेक अच्छी प्रतिभाएँ शेष दुनिया में अपनी आवाज़ पहुँचाने के लिए कसमसा रही हैं। वे बेहतर रचनात्मकता के साथ आपकी महत्त्वपूर्ण पत्रिका से जुड़ना चाहती हैं।

-डॉ. भरत प्रसाद (शिलोंग, मेघालय)

❐

लेखक की पहचान एक देश से जोड़ी जाए यह ज़रूरी नहीं–सुषम बेदी

साक्षात्कार : डॉ. सुधा ओम ढींगरा

सुषम बेदी

जन्म : 1 जुलाई 1945, फीरोजपुर पंजाब में।
शिक्षा : इंद्रप्रस्थ कॉलेज, दिल्ली से 1964 में बी.ए., 1966 में एम.ए. और 1968 में दिल्ली यूनिवर्सिटी से एम.फिल. की डिग्री तथा 1980 में पंजाब यूनिवर्सिटी से पीएॅच.डी. की उपाधि।
प्रमुख कृतियाँ : उपन्यास : हवन, लौटना, नव भूम की रसकथा, गाथा अमरबेल की, कतरा दर कतरा, इतर, मैंने नाता तोड़ा तथा मोर्चे। कहानी संग्रह : चिड़िया और चील, सड़क की लय। काव्य संग्रह: शब्दों की खिड़कियाँ। शोधग्रंथ : हिन्दी नाट्य प्रयोग के संदर्भ में।
कार्यक्षेत्र : रंगमंच, आकाशवाणी और दूरदर्शन की अभिनेत्री। दिल्ली दूरदर्शन और रेडियो पर नाटकों तथा दूसरे सांस्कृतिक कार्यक्रमों में 1962 से 1972 तक काम किया। 1985 से कोलंबिया विश्वविद्यालय, न्यूयार्क में हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रोफेसर। अनेक रचनाओं का अंग्रेज़ी, उर्दू, फ्रेंच और डच में अनुवाद हुआ है।
पुरस्कार / सम्मान : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा हिन्दी भाषा और साहित्य के योगदान के लिए पुरस्कार। दिल्ली की हिन्दी साहित्य अकादमी ने हिन्दी साहित्य में योगदान के लिए सम्मानित किया।

संपर्क :
sb12@columbia.edu

सुषम बेदी के उपन्यास भारत से लाकर पढ़े और कहानियाँ विभिन्न पत्रिकाओं में। आप न्यूयार्क में रहतीं हैं, मैं जान गई थी, पर कभी बात करने का सुअवसर नहीं मिला। एक दिन कहानी गोष्ठी को लेकर फ़ोन पर आपसे बात हुई और संवाद शुरु हो गया। सुषम बेदी अमेरिका की उन रचनाकारों में से एक हैं; जिन्होंने वैश्विक हिन्दी साहित्य को बहुत गौरव प्रदान किया है। मुझे सुषम जी के बारे में जानने की बहुत जिज्ञासा थी। इसलिए आपके लेखन, संघर्ष और प्रवासवास की चुनौतियों को लेकर लम्बा वार्तालाप हुआ और उपन्यासकार, कथाकार और कवयित्री सुषम बेदी जी ने बड़े ठहराव तथा गंभीरता से हर विषय पर विस्तार से बताया .....

प्रश्न: कविता, कहानी, उपन्यास तीनों विधाओं में लिखतीं हैं आप, पर पहचान एक उपन्यासकार की रही है। मूलत: आप क्या हैं और किस विधा में आपको संतोष मिलता है ?

उत्तर: मूलत: मैं क्या हूँ ? कवि या कहानीकार। लिखने की प्रक्रिया का मूल लेखन ही होता है वह चाहे काव्य में बाहर आए या गद्य में। यह सच है कि मैं अधिकतर उपन्यास या कहानियों के माध्यम से ही पाठकों के सामने आती रही हूँ। पर मेरा पहला प्रस्फुटन कविता में ही हुआ था। उपन्यास भी उन्हीं दिनों लगभग साथ-साथ ही लिखा गया था। मुझे लगता है कि जब मैं देश से बाहर आई तो मेरे पास बहुत-सी कहानियाँ कहने की ललक मौजूद थी। कहानी या उपन्यास को माध्यम बनाना सहज लगा। देखा जाए तो जितने भी प्रमुख लेखक हैं, उन्होंने किसी भी एक विधा में काम नहीं किया। प्रसाद या निराला ने कविता के साथ-साथ कहानी, उपन्यास, निबंध सभी कुछ लिखा। अज्ञेय ने तो कोई विधा छोड़ी ही नहीं।

उपन्यास से संतोष ज़्यादा होता ही होगा; जो मैं बार-बार इसकी तरफ मुड़ती हूँ। कहानी संग्रह दूसरा आ रहा है और उपन्यास आठवाँ। जो भी चीज़ मेरे दिमाग में आती है, पूरे फार्म में आती है। उपन्यास ऐसी विधा है; जिसका कैनवास इतना बड़ा होता है कि पूरी तरह खिलवाड़ कर पाती हूँ। जो भी चरित्र बनते हैं, उनसे सम्बद्ध हर तरह की बात कह पाती हूँ। अंतर्मन ज़्यादा सम्पूर्ण होकर पूर्णता में अभिव्यक्ति पाता है। कहानी ज़बरदस्ती लिख देती हूँ, उतनी फुर्सत नहीं होती, विषय के अन्दर डूबने का समय नहीं होता। सोचती हूँ कि कहानी बन रही है उसे बाँध दूँ, बाद में उस विषय को देखा जाएगा। मेरी कई कहानियाँ बीज रूप में आईं और बाद में उनका विस्तार उपन्यास के रूप में हुआ। शायद पूरा स्वरूप आपको उनका मिले या न मिले या कई बार कहानी स्वरूप छपवाया ना हो। कहानी लिखकर भी कई बार संतोष होता है। यह एक बारगी में ही लिखी जाती है। उपन्यास के साथ एक पूरी लम्बी यात्रा होती है। उसका अपना मज़ा होता है। उपन्यास लिखते हुए मैं थक जाती हूँ, निचुड़ जाती हूँ और विधाएँ निचोड़ती नहीं। कहानी एक चिंगारी होती है और उपन्यास हवन।

प्रश्न: शायद इसीलिए संतोष मिलता है...

उत्तर: (सुषम जी ने गंभीर हँसी में कहा) शायद, बिलकुल निचुड़ जाती हूँ।

प्रश्न: आपके लेखन के मूल विषय क्या रहे हैं ?

उत्तर: लिखने के मूल में एक बड़ी परिस्थिति मेरा भारत छोड़कर चले आना ही था। यहाँ के अलग तरह के अनुभव, नए तरह का रहन-सहन, नए तरह के लोग, भाषा-संस्कृति, भारत की स्मृतियों और नॉस्टेल्जिया- सभी मेरे अंतर्मन को दोलित करते रहते थे। काफी अरसे तक भीतर जो कुछ जम रहा था, उसे फूटने के लिए सही माहौल और

तात्कालिक वजहें यहीं मिलीं। मुझे मानवीय रिश्तों, रिश्तों के बीच व्यक्ति की अपनी पहचान, मानव मन की गुत्थियाँ, उलझनों को समझने की, उनकी पड़ताल में गहरे उतरते चले जाने में हमेशा रुचि रही है। यही मेरे लेखन के मूल विषय बने। मैं जीवन की ओर इस लिए मुड़ पाई क्योंकि उन्हीं से घिरी होती थी। विदेश आने के बाद मन में उन्हीं के जगत को समझने और उसके भीतर उतरने की आकांक्षा थी। अब भी वह ख़त्म नहीं हुई है।

प्रश्न: जीवन में कहानियाँ बिखरी हुई हैं, लेखक वहीं से कथानक चुनता है, किसी विचार या विषय को आप किस तरह से विस्तार देती हैं और उनको लेखनीबद्ध करने की प्रेरणा आप को कहाँ से मिली ?

उत्तर: 'हवन' उपन्यास फूटने का क्षण शायद नए साल पर होने वाले किसी हवन में भाग लेना ही था, क्योंकि उसी क्षण में ध्यान करते-करते अचानक यहाँ की ज़िन्दगी की विसंगतियां, संस्कृति टकराव, दो ज़िन्दगियों को एक साथ जीते चलना और त्रिशंकु होने की मजबूरी एक कथा का आकार लेने लगी थी। पर उसके मूल में पिछले छह-सात बरसों से जिया हुआ अमरीका का जीवन था और उससे भी पहले चार साल यूरोप में बिताए थे, इस तरह से मन में तुलनात्मक उठापटक भी चलती रहती थी। हिंदुस्तान में मैं 27 वर्ष रह चुकी थी। यहाँ के हिन्दुस्तानी कुछ और ही तरह के थे। यहाँ की भौतिक दौड़ में शामिल एक कृत्रिम हिन्दुस्तान रचते, एक झूठमूठ की भारतीय संस्कृति गढ़ते। ऐसी संस्कृति जिसका मूलवास और मूलाधार यहाँ के मंदिरों में हैं। ये अपने आपको पकड़ने के लिए दोनों और भागते। मुझे ये बातें बहुत तकलीफ़ देती थीं। मैं आर्थिक तौर पर सशक्त थी और आराम की ज़िन्दगी बसर कर रही थी। लेकिन अपने आसपास के भारतीयों को जिस आर्थिक संघर्ष से गुज़रता देखती थी या खुद भी 'परदेसी' होने के नाते जिस भाषागत और सांस्कृतिक विषमताओं को महसूस करती थी, वह बातें मुझे परेशान करती थीं।

'लौटना' मेरे अपने मन और अनुभव के बहुत करीब है। जो हवन में नहीं कह पाई थी, वह लौटना का फोकस हो गया। हवन में सामाजिक और बाहरी संघर्ष ज्यादा था। अंतर्मन के विस्तृत विश्लेषण का मौका नहीं था। इतनी ढेर सारी आहुतियाँ जो डालनी थीं। पर लौटने में औरत की उस अंदरूनी कसमसाहट और तकलीफ़ को व्यक्त करने की छटपटाहट थी, जो यहाँ के माहौल में अपने को पूरी तरह से खो रही थी। फिर भी अपने प्राकृतिक पर्यावरण में लौट नहीं सकती थी क्योंकि उसका जीवन अब एक निश्चित स्थान और दिशा में बंध गया था। इस तरह 'लौटना' की मीरा का जन्म हुआ। मीरा मेरे लिए उन सब आंतरिक विषमताओं और अंतर्विरोधों का प्रतीक बन गई थी, जिसे यहाँ रहते हुए मैंने सभी भारतीयों में देखा। उसकी तकलीफ़ जैसे हर अप्रवासी की तकलीफ़ थी। हम लोग जो ऊपर से इतने खुश, इतने सफल और एकदम मज़बूत इन्सान दिखते हैं, भीतर से कितने अकेले, कितने कमज़ोर और खोखले हैं।

एक दिन 'इतर' की रचना शुरू हो गई। मैं जो कुछ भी लिखती हूँ उसे जीती हूँ। सालों तक जीती रहती हूँ, जब तक की उपन्यास ख़त्म नहीं हो जाता। बहुत बार देर तक भी जीती हूँ। खुद ही रस भी लेती हूँ, चाहे वो पीड़ा हो, बहुत बार हैरान भी होती हूँ खुद पर कि क्या मैं पाठक जैसा सुख ले रही हूँ या कि यह लेखन का सुख कुछ और है ? पीड़ा को भी बार-बार भोगना, उसे सोचना शायद आत्मपीड़न का ही परवर्टेड सुख हो सकता है। मैंने जो कुछ लिखा है अपने आसपास से ही उठाया है। जीवन से प्रेरित हुई हूँ, जीवन की विडम्बनाओं से, विसंगतियों से, जीते जागते लोगों से ! लोगों को उन विसंगतियों से जीते देखा है, उन विडम्बनाओं को देखा है, उन्हीं में से चरित्र उठाये हैं और पहचानी स्थितियों में उतरकर चरित्रों का विकास किया है। जीवन के ज़्यादा से ज़्यादा नज़दीक जाने की कोशिश की है। जितना नज़दीक जाती हूँ, उतना ही उसकी विसंगतियां देखती हूँ और उन्हीं के द्वारा मैं ज़िन्दगी के यथार्थ को पकड़ने की कोशिश करती हूँ - जितनी गहरी विसंगतियां उतने ही चोखे यथार्थ के रंग।

'इतर' भी इन्हीं विसंगतियों की पहचान की उपज थी। जिन लोगों को हम अपने भीतर का श्रेष्ठतम् अर्पित कर देते हैं, क्योंकि हमने उन्हें श्रेष्ठ का प्रतीक मान लिया है, वही उस श्रेष्ठ की भूमिका अदा करते हुए हमें ठगते हैं। हम फिर भी उस ठगी को देख नहीं पाते क्योंकि हमें विश्वास अर्पित करने के लिए उस विश्वास की ज़रूरत है। कितना अन्तर्विरोध है इस सारी स्थिति में। हमें मालूम है कि हमें ठगा जा रहा है, फिर भी इसलिए नहीं देख पाते कि हम देखना नहीं चाहते वर्ना क्यों हम शिकंजे से बाहर नहीं आते। धर्म ने आज तक इन्सान को इसी तरह ठगा है और अब धर्म के दावेदार वही कर रहे हैं। एक गुरु को मुझे काफ़ी नज़दीक से देखने और जानने का मौका मिला। तब लगा कि घोर स्वार्थी होते हैं यह लोग! दूसरों के भले के लिए नहीं, उन्हें चूसने के लिए होते हैं। पर मेरे तर्क से उनके भक्त कभी प्रभावित नहीं होते थे। इससे मेरी परेशानी और भी बढ़ जाती। मैं अपने आपको बहुत लाचार पाती। इस तकलीफ ने 'इतर' लिखवाया।

जब लिखती हूँ तो वह एक तरह का मैडिटेशन होता है। समस्याओं पर गौर करना, परिस्थितियों और पात्रों के माध्यम से उसकी गहराई में जाना, उसकी एक-एक परत खोलना और फिर ... और भीतर घुसकर जानने की कोशिश की आखिर सच्चाई क्या है ? जो सच्चाई पाती हूँ, उसी को पाठक तक पहुँचाना मेरे लेखन कर्म का लक्ष्य होता है। मेरी बेचैनी ही मेरी रचनाओं का स्रोत बनती हैं।

जीवन में जो स्थायी और मूल्यवान् माना जाता है, जैसे कि धर्म, संस्कृति और पारिवारिक सम्बन्ध, जब उन्हीं में तारतम्य नहीं रहता, उन्हीं में छेद दिखने लगते हैं, चाहें वे संस्कृतियों के टकराव की वजह से हो, औरत के प्रति अन्याय की वजह से या अप्रवासी जीवन की विषमताओं की वजह से- तो मेरा अपना केंद्र कहीं डगमगा जाता है। उसी धुरी और केंद्र या जीवन को स्थायित्व देने वाले सूत्रों की खोज-रचना की भी, तलाश बन जाती है। उसी तलाश की आंतरिक यात्रा पर ही पाठक को भी ले जाना होता है।

प्रश्न: क्या कभी रचना के पूरा होकर प्रकाशित हो जाने के बाद महसूस हुआ है कि आप जो कहना चाहती थीं, कह नहीं पाई या भिन्न तरीके से लिखतीं तो और भी निखार आता। चाहे आलोचक उस कृति की कितनी भी तारीफ़ क्यों न कर चुके हों ?

उत्तर: जी, जब बाद में अपना लिखा पढ़ा और पढ़ने के लिए भी पढ़ना पढ़ता है, तो दिमाग में कई हिस्से दोबारा लिखने लगती हूँ, पर कई हिस्से पढ़कर हैरान हो जाती हूँ कि ये कब लिखे, मुझे यकीन ही नहीं होता कि मैंने लिखे है, खुशी होती है, अब मैं लिखना चाहूँ भी तो वैसे नहीं लिख सकती और कई जगह ऐसी भी आती हैं, महसूस होता है कि अब मैं इसे भिन्न तरीके से लिखती। अपने आपका

भी विकास होता है, सोच बदलती है, अनुभवों से विचारों में परिवर्तन आता है। विचार कोई ठहरे तो रहते नहीं। नारीवाद के लिए मैं जैसे पहले सोचती थी, अब नहीं सोचती। हाँ, यहाँ रहने के बाद मैं औरत को अलग तरह से समझने लगी हूँ, सोचने लगी हूँ।

प्रश्न: लेखक की रचनाशीलता में आप पाठक और समाज की भूमिका को किस रूप में देखती हैं ?

उत्तर: पाठक और समाज दोनों ही रचना की हस्ती में शामिल रहते हैं। चाहे प्रगट रूप से हों या प्रच्छन्न रूप से। रचना का मूल उद्गम या उद्देश्य चाहे आत्माभिव्यक्ति अथवा आत्मसुख ही हो, पर समाज में पलने वाला लेखक समाज से विमुख कैसे हो सकता है और अगर विमुख है तो उस विमुखता से समाज का कोई पक्ष ही प्रतिबिम्बित होता है अंतत: समाज से विच्छिन्न रचना कोई नहीं होती।

अब सवाल उठता है कि रचनाकार की समाज और पाठक के प्रति भूमिका है या क्या ज़िम्मेदारी है ..रचनाकार सामाजिक प्राणी है, समाज में रह कर ही उसकी अंतर्दृष्टियाँ विकसित हुई हैं, तो उनकी ही परछाईं हमें उसकी कृति में मिलेगी। यह और बात है कि कुछ लोग समाज को बहुत प्रगट रूप से देखना चाहते हैं यानी कि कोई न कोई स्पष्ट उपदेश कृति से पाना चाहते हैं तो मैं इससे सहमत नहीं। मुझे लगता है कि समाज की भूमिका यानी कि सामाजिक समस्याएँ प्रच्छन्न रूप से यानी कि काव्यात्मक जामा पहन कर आएँ। उनका नंगा प्रदर्शन कई बार लेखन को एक नारा या समाज विज्ञान का नीरस लेख बना कर धर देता है।

साहित्य जब कोई सामाजिक समस्या उठाता है तो उसका पूरा का पूरा ट्रीटमेंट मानवीय आधार पर होता है, मानवता जो कलात्मकता के बीच उभरती है, उसकी स्टेटमेंट देने की ज़रूरत नहीं होती। पर पाठक तक जो बात ऐसे पहुँचती है कि अन्दर तक असर कर दे। जो बात प्रच्छन्न, अदृश्य हो कर जब पाठक को छूती है तो देर तक और दूर तक प्रभाव बना रहता है। यथार्थ की पकड़ता का सम्बन्ध भी इसी प्रच्छन्नता से इस तरह जुड़ा है कि यथार्थ की पकड़ उतनी ही गहरी हो जाती है, जब बात सच से दूर दिखे पर वह सच को ही और ज़ोरदार तरीके से पकड़ने की कोशिश में हो। नए कहानीकारों में उदय प्रकाश और प्रियंवद मुझे इसीलिए ख़ास पसन्द हैं। संस्कृत काव्य शास्त्र में भी अमिधा की जगह शब्द की व्यंग्य शक्ति ही श्रेष्ठ काव्य की सामर्थ्य मानी गई है।

प्रश्न: इतने वर्षों की सृजनशीलता में आप आज कहानी में आए परिवर्तनों को कैसे देखती हैं।

उत्तर: कहानी आज कई तरह से विकसित हो रही है। मुझे कहानी में कहानीपन का मोह बहुत ज़्यादा है। पर साथ ही जिस कहानीकार की रचनात्मकता के साथ सोच जितनी विकसित होती है, उतनी ही सबल कहानियाँ वह रच पाता है। सोच से मेरा मतलब अंतर्दृष्टि से ही है। वही जिसकी प्रच्छन्नता की बात पिछले जवाब में मैं कर चुकी हूँ। मेरा कहानीकार नए कहानी के ज़माने का है। छठे दशक में जब मैं कालेज में पढ़ रही थी, हम नए कहानीकारों को पढ़ कर ही बड़े हुए। तभी मेरा नज़रिया विकसित हुआ होगा।

ख़ैर नई कहानी के बाद भी कहानी लगातार लिखी जा रही है। पर मुझे वही कहानी श्रेष्ठ लगती है जिसमें यथार्थ की गहरी पकड़ हो। और जिस अंतर्दृष्टि को लेखक व्यक्त करना चाहता है वह पूरी कहानी में गुंथी हुई हो। वह नैन नक्श से ऊपर लावण्या की तरह दमके।

प्रश्न: साहित्य में बाज़ारवाद की बहुत घुसपैठ हो गई है। कुछ लोग आज भी मानवीय मूल्यों पर आस्थावान हैं और कुछ बेहिसाब चर्चाएँ, नाम की उछाल, प्रचार पाने के लिए पतन की किसी भी हद तक जाने के लिए तैयार है -क्या सोचती हैं आप ?

उत्तर: बाज़ार से कुछ लेनदेन रखना न तो मेरे बस की बात है न ही मैं अपनी रचनात्मकता को उस दिशा में धकेल कर बर्बाद करना चाहती हूँ। जिनको उन क्षणिक उपलब्धियों या चर्चाओं में सुख मिलता है उन्हीं के लिए क्यों न रहने दें बाज़ार को। बाकी आप की यह बात भी ठीक है कि बाज़ार का सहारा लेकर लोगबाग बहुत कुछ बटोर ले जाते हैं और असली प्रतिभा वाले अदेखे, अचर्चित रह जाते हैं तो यहाँ में कवि शमशेर बहादुर की कविता हमेशा याद रखती हूँ.....

बात बोलेगी, हम नहीं
भेद खोलेगी, बात ही

यानी कि कवि या कहानीकार का लेखन ही उसका प्रवक्ता, उसका एजेंट है। उसी को कह लेने दीजिए जो भी कहना है।

प्रश्न: जीवन में ऐसा क्या घटित हुआ कि आप लेखिका बनी?

उत्तर: घटित कुछ नहीं हुआ, हाँ किशोरावस्था से ही हिंदी, उर्दू का शौक पड़ गया था और यह सब यू.पी में रहने के दौरान हुआ। नवीं कक्षा से मैंने कविताएँ लिखनी शुरू कर दी थीं और तभी एक उपन्यास भी लिखा था; जिसका आज कहीं पता नहीं। मैं जब कवियों को पढ़ती थी तो मैं भी वही बनना चाहती थी। दिल्ली विश्वविद्यालय में मैंने अंग्रेज़ी आनर्ज़ छोड़ हिन्दी आनर्ज़ लिये और फिर मैं हिंदी साहित्य में घुसती चली गई। तब तक मेरी कविताएँ भी परिपक्व होने लगी थीं। कहानियाँ भी लिखने लगी थी। शायद इस सबके बीज मेरे अन्दर रहे होंगे।

प्रश्न: बहुत-सी पत्रिकाएँ प्रवासी विशेषांक निकालती दिखाई देती हैं। प्रवासी दिवस, प्रवासी साहित्य सम्मेलन, प्रवासी सम्मान ..आप प्रवासी साहित्य को किस तरह देखती है?

उत्तर: मेरे विचार से प्रवासी साहित्य 'विकासशील अस्तित्व (entity)' है। हिंदी साहित्य की शुरुआत, 19 वीं सदी में आधुनिक काल, हिन्दी साहित्य का वह बचपन था। जिसमें भारतेंदु वगैरह आए और महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भाषा सुधार किया। मुझे ऐसा महसूस होता है कि प्रवासी साहित्य भी अपने बचपन के दौर से गुज़र रहा है, यह एक शुरुआत का समय है। इसने अभी आमतौर पर वैसा साहित्य नहीं दिया जैसा और जहाँ हिंदी साहित्य खुद पहुँचा हुआ है। प्रवासी साहित्य में छुटपुट अच्छा लिखा देखने को मिल जाता है पर मुझे लगता है कि उसमें अपनी दिशा खोजी जा रही है, उस दिशा में अभी परिपक्वता नहीं आई है। यह उसका अभी शैशवकाल है। पत्रिकाएँ भी जो छपती हैं, अभी कुछ अच्छी निकलने लगी हैं, पहले तो कुछ भी पढ़ने लायक नहीं होता था।

प्रश्न: विदेशों में लिखे जा रहे साहित्य से आप कितनी आश्वस्त हैं ...

उत्तर: विदेशों में लिखा जा रहा हिन्दी साहित्य धीरे -धीरे खूब विकसित हो रहा है। यहाँ के लेखकों के पास नई ज़मीन है, नए विषय हैं और देखा जाए तो यहाँ रहते हुए नई अंतर्दृष्टियों के विकास की भी

पूरी संभावनाएँ हैं। मुझे अभी भी एक बात से उलझन होती है कि यहाँ बैठे हुए लेखक अपनी सारी कहानी -कथाओं में बस भारतीय परम्पराओं, रिवाज़ों से तुलना करते हुए यहाँ के मूल्यों को ख़राब और भारतीयता को सर्वोपरि स्थापित करना चाहते हैं। यह बात मुझे पचती नहीं। या तो यहाँ - विदेश -के समाज को पूरी तरह समझ कर उनको कोई नई दृष्टि देनी हो, या किसी तरह की मानवीयता को स्थापित करना हो वर्ना इस तरह के सारे प्रयास निरर्थक साबित हो जाते हैं। लेखक का काम कलात्मक मूल्यों की, मानवीय मूल्यों की स्थापना है न कि भारतीयता की श्रेष्ठता का ढिंढोरा पीटना।

प्रश्नः हमारा साहित्य अमेरिका का हिंदी साहित्य कहलाए या प्रवासी हिंदी साहित्य ?

उत्तरः यह प्रश्न बड़ा टेड़ा हैं, आसान नहीं है.. जब मेरा 'हवन' उपन्यास आया था, मुझे कई चुनौतियों का सामना करना पड़ा था। अब स्थिति बदल गई हैं। कई लोग लिखने वाले आ रहे हैं, यू.के से लिख रहे हैं, बाकी देशों से एक-दो लिख रहे हैं, मॉरिशस से तो पहले से ही लेखक हैं। अंततः क्या होने जा रहा है जो भविष्य मैं देखती हूँ कि भारत के हिन्दी साहित्य को इस बात का ध्यान रखना ज़रूरी है कि बाहर का हिन्दी साहित्य भी मुख्य शरीर का अंग है। हिन्दी साहित्य की रचना बाहर इतनी बड़ी तादाद में हो रही है कि वह मुख्यधारा का अंग अब नहीं बन पाएगी। उसकी पहचान इसी तरह होगी यह अमेरिका का साहित्य है, यह यूके का है, यह मॉरिशस का, या यूरोप का। अलग-अलग तरह से पहचान बनेगी। हिन्दी साहित्य का बहुत बड़ा दिल है और उसमें सभी समा भी जाएगा, सहयोग भी बना रहेगा और पहचान तो बनेगी ही। साहित्य तो वर्गीकरण करता ही रहता है यह काम आलोचकों का है, वर्गीकरण में वर्गीकरण होता रहता है, प्रयोगवाद, प्रगतिवाद, छायावाद दुनिया इतनी भूमंडलीकृत, वैश्वीकृत हो गई है, दोहरी नागरिकता भी तो होती है और लेखक की पहचान एक देश से जोड़ी जाए यह ज़रूरी नहीं.

बिल्कुल सही कहा आप ने सुषम जी, साहित्य तो वर्गीकरण करता ही रहता है, हमें बस लेखन पर ध्यान देना चाहिए। समय अपने -आप सब कुछ स्पष्ट कर देगा।

❐

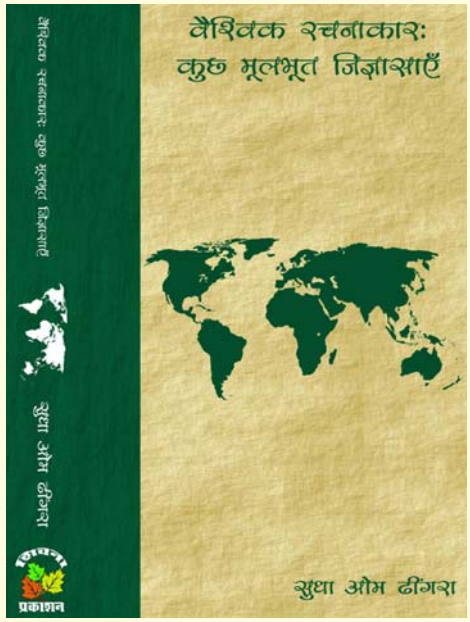

(यह साक्षात्कार डॉ. सुधा ओम ढींगरा द्वारा सम्पादित साक्षात्कार संग्रह 'वैश्विक रचनाकार: कुछ मूलभूत जिज्ञासाएँ' से साभार)

UNITED OPTICAL

WE SPECIALIZE IN CONTACT LENSES

- Eye Exams
- Designer's Frames
- Contact Lenses
- Sunglasses
- Most Insurance Plan Accepted

Call: RAJ

416-222-6002

Hours of Operation

Monday - Friday 10.00 a.m. to 7.00 p.m.
Saturday 10.00 a.m. to 5.00 p.m.

6351 Yonge Street, Toronto, M2M 3X7 (2 Blocks South of Steeles)

कहानी

फ्लॉरिस्ट

पुष्पा सक्सेना

पुष्पा सक्सेना

जन्म: इलाहाबाद।
शिक्षा: भूगोल और हिंदी में एमए, पीएच.डी.।
शोध प्रबंध: डॉक्टर हरिवंश राय बच्चन का गद्य-साहित्य विषय पर शोधोपाधि।
प्रकाशित कृतियाँ: उपन्यास: देवयानी, वह सांवली लड़की, रिचा, लौट आओ तुम, बाँहों में आकाश। कहानी संग्रह: उसके हिस्से का पुरुष, पीले गुलाबों के साथ एक रात, उसका सच, सूर्यास्त के बाद, एक नया गुलाब, अलविदा, प्यार के नाम, वैलेंटाइंस डे, प्यार की शर्त। कथा-साहित्य: सात-महक, माटी के तारे, नन्हें इंद्र धनुष, अनोखा रिश्ता हिन्दी, अनोखा रिश्ता मराठी, अनोखा रिश्ता पंजाबी, A bond of love english.
हास्य नाटक- अनारकली का चुनाव।
कहानियों का मराठी, गुजराती, पंजाबी, अंग्रेज़ी, बंगला भाषाओं में अनुवाद।
पुरस्कार व सम्मान:ऑथर्स गिल्ड ऑफ़ इंडिया, सूचना तथा प्रसारण मंत्रालय का भारतेंदु हरिश्चन्द्र पुरस्कार, पर्यावरण मंत्रालय तथा राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा पुरस्कृत। कुछ कहानियों पर एन एफ़ डी सी तथा फ़िल्म डिवीज़न ऑफ़ इंडिया, मुम्बई द्वारा टेली फ़िल्मों का निर्माण। राँची तथा दिल्ली टी.वी और आकाशवाणी द्वारा सीरियल, इंटरव्यू नाटकों का प्रसारण।
संप्रति: अमरीका के सियाटेल नगरी में स्वतंत्र लेखन।

सम्पर्क:13819 NE 37TH PL,
Bellevue, WA 98005
ईमेल-
pushpasaxena@hotmail.com

'अरे - श्याम ! डॉ. श्याम ही हो न तुम ?'

अचानक आई उस आवाज़ पर युवक ने सिर उठाकर देखा था। दाढ़ी से ढके होने के बावजूद, चेहरे की सुन्दरता स्पष्ट थी।

'ये क्या हाल बना रखा है, इतने पास से भी पहचानना मुश्किल था।'

युवक की आँखों में अपरिचय का भाव देख, शिवानी हँस पड़ी थी।

'पहचाना नहीं, मैं शिवानी हूँ। तुम्हारी सीनियर ज़रूर थी, पर अपने सीनियर्स को इतनी जल्दी भुला देना ठीक नहीं है, डॉक्टर।'

'माफ कीजिए, आप बहुत बदल गई हैं।'

'इतनी तो नहीं बदली कि तुम पहचान भी न पाओ। लगता है नए चेहरों में पुराने चेहरे बदरंग हो जाते हैं।' शिवानी के होठों पर हँसी खिल आई थी।

'नहीं वैसी बात नहीं है, आप अपनी सुनाइए।'

'ये क्या आप-आप लगा रखा है? डोंट बी फ़ॉर्मल, श्याम !हे ! सुना था मेरे जाने के बाद तुम्हारी कोई खास मित्र बन गई थी। क्या हाल है उसका,शादी-वादी कर ली या अभी रोमांस ही चल रहा है?'

'किसकी बात कर रहीं है ?' श्याम ने अनभिज्ञता दिखाई थी।

'कमाल है, सुना है दीवानगी की हद तक उसे चाहते थे। प्रिया ने तो खत में यही इन्फ़ॉर्मेशन दी थी।'

'वो सब छोड़िए, आप कैसी हैं?'

'अच्छी-भली सामने खड़ी हूँ, वेट भी दो-तीन किलो बढ़ गया होगा। पहले तो हम कैलोरीज़ गिन कर खाते थे।'

'ठीक ही तो लग रही हैं।'

'अरे भई इतने दिनों बाद मिले हैं, एक कप कॉफी फिर साथ हो जाए?'

'कॉफी की तो आदत छूट गई है।'

'लगता है तुम वह श्याम नहीं, फिल्मी कहानी की तरह श्याम के जुड़वाँ भाई हो। याद नहीं हमारा कॉफी टाइम फिक्स हुआ करता था, क्या यह भी भूल गए हो कि मैं तुम्हारी रजिस्ट्रार हुआ करती थी?

'मैं तो वह सब कुछ भूल गया हूँ, शिवानी जी।'

'लगता है तुम सचमुच सब भूल गए हो, वर्ना ये शिवानी में 'जी' कहाँ से आ गया? इतना भी याद नहीं, हम सबको पहले नामों से पुकारा करते थे।'

'मुझे तो कुछ याद ही नहीं रहा, शिवानी।'

यह क्या बुझी-बुझी बातें कर रहे हो, तुम्हारी यादों की खिड़कियाँ खोलने को चलो कॉफी हाउस चलते हैं। वह भी याद है या मैं रास्ता दिखाऊँ ?

मेडिकल कॉलेज के पास बने उस कॉफी-हाउस में स्टूडेंटस ही नहीं वरन् डॉक्टर्स और इंटर्न्स भी वहाँ आ बैठते थे।

'दो कॉफी-कुछ साथ में चलेगा?' शिवानी ने आर्डर देते पूछा था।

'ओनली लाइम जूस-।'

'ये क्या कॉफी की जगह लाइम जूस, तुम सचमुच बदल गए हो, डॉक्टर श्याम।'

'सिर्फ श्याम ही चलेगा। आई एम नो मोर ए डॉक्टर।'

'क्या कह रहे हो? कॉलेज के गोल्ड मेडलिस्ट थे तुम।'

'था, अब कुछ नहीं हूँ। सच बस इतना ही है।'

'सच इसमें कहीं ज़्यादा है, क्या हुआ बताओगे नहीं श्याम ? हम सीनियर्स तुम्हें कितना एप्रिशिएट करते थे, तुम्हें पता नहीं होगा। यहाँ आते समय पुराने चेहरों में तुम्हारा चेहरा ही सबसे ज़्यादा मुखर था।'

'आजकल कहाँ हो, शिवानी ? तुम तो स्टेट्स चली गई थीं न?'

'हाँ मैडिसिन में रेसीडेंसी मिल गई थी, वहीं डॉ. अरुण से शादी कर ली। अरुण की बहिन की शादी में इंडिया आई तो अपने पुराने कॉलेज को एक बार फिर देखने का मोह हो आया था।'

'कैसा लगा यहाँ आकर ?'

बहुत से नये चेहरों में पुराने चेहरे खोज रही हूँ, आज तुम मिल गए। अब तुम बताओ कैसा चल रहा है सब?

'दूसरों के लिये शायद सब ठीक होगा, पर मेरी

तो दुनिया ही बदल गई है, शिवानी।'

'क्या बात है श्याम, कभी हमने एक-दूसरे के दुःख-सुख बाँटे हैं। मुझे नहीं बताओगे?'

'बताने को अब कुछ भी शेष नहीं है।'

'राख में भी चिंगारी बची रह जाती है, श्याम।'

'पर मैं तो पूरे का पूरा राख हो गया हूँ, शिवानी।'

'गलत कह रहे हो डॉक्टर। ये बेतरतीब बाल, दाढ़ी साफ बता रही है, तुम किसी का ग़म पाल रहे हो।'

'किसका ग़म, किसकी बात कर रही हो ?'

'जहाँ तक याद पड़ता है, शायद कविता नाम था न उसका ?'

'हाँ -वह कविता ही थी।' श्याम जैसे अपने आप से बातें कर रहा था।?

'तुमने तब शायद सर्जरी में रेजीडेंसी ज्वाइन की थी न श्याम? इंटर्नीज़ के ड्यूटी ज्वाइन करने का सबसे ज़्यादा तुम्हें ही इंतज़ार था, श्याम'।

'वो तो उनके आने से हमारा काम आसान हो जाता इसलिए वर्ना....।'

'हाँ-हाँ यह मैं समझती हूँ, बेचारे इंटर्नीज़ को किस कदर पीसते थे। उनसे काम लेते हम भूल ही जाते थे कि जब हम इंटर्नीज़ थे तो इसी काम के बोझ के मारे कितना रोते थे। कभी-कभी बस दो घंटे सोना हो पाता था।'

'आश्चर्य है आपको कविता की अब तक याद है?'

'क्यों नहीं, बेहद डेलीकेट, क्यूट सी लड़की थी, मेडिकल प्रोफेशन के लिए एकदम अनफिट लगती थी न, श्याम?'

'पहले ऐसा ही लगा था, पर बाद में उसने अपने काम से सबको आश्चर्य में डाल दिया था। न जाने कहाँ से उत्साह की ऊर्जा पाती थी कविता।' श्याम खोया-खोया सा कहता गया।

'सुना है डॉ. नेगी ने उसे 'मोस्ट रिमार्केबिल गर्ल ऑफ़ दि बैच' कहा था?'

'हाँ शिवानी, वह हर जगह, हर बात में रिमार्केबिल थी।'

'कहानी कहाँ से शुरू करोगे, श्याम?'

'सुनने के लिये पेशेंस रख सकोगी?'

'और मेरे पास करने को है ही क्या, शायद तुम्हारे काम आ सकूँ?'

'तुम्हारे जाने के बाद सीनियर रेज़ीडेंसी का चांस मुझे मिला था, शिवानी।' कविता के साथ दो

और इंटर्नीज़ की ड्यूटी सर्जरी वार्ड में लगी थी। कविता ने आकर मुझसे कहा था-

'सर, न जाने क्या बात है, खून देखते ही मुझे चक्कर से आ जाते हैं। सीरियस आपरेशन्स अटेंड करना मुझे कठिन लगता है।'

'हाँ सर! क्लास में दो-एक बार यह फेंट भी हो चुकी है, सचमुच यह ब्लड देख ही नहीं सकती।' रश्मि ने उसकी बात की पुष्टि की थी।

'फिर इस प्रोफेशन में आई ही क्यों?'

'मम्मी की विश थी, डॉक्टर बनूँ। मैंने कोई खास प्रयास नहीं किये, पर न जाने कैसे सेलेक्शन हो गया।' कविता ने सपाट स्वर में जवाब दिया था।

'शायद तेरे पापा ने डोनेशन दे दिया हो। कहीं तो पैसा खर्चना है। क्या करेगी इतने पैसों का कविता, इकलौती बेटी ठहरी न।' दूसरी इंटर्नीज़ ने कविता को छेड़ा था।

'एडमीशन डोनेशन से भले ही हो जाए, यहाँ काम में कोई छूट नहीं है, समझीं, मिस कविता।' श्याम का स्वर कटु हो आया था।

'कौन कहता है मेरा एडमीशन डोनेशन से हुआ है। आई एम ए नेशनल स्कॉलर, टॉपर ऑफ माई बैच। प्री-मेडिकल एग्ज़ाम में भी मेरी पूरे प्राविंस में थर्ड पोज़ीशन थी समझे डॉक्टर ?' उसके उत्तेजित लाल मुँह पर आत्मविश्वास छलक रहा था।

'ठीक है, ये तो आपका काम ही बताएगा आप कितने पानी में हैं।' श्याम ने जैसे चुनौती दी थी।

श्याम की उस बात ने कविता के अहं को ललकारा था।

उसी दिन ट्रक दुर्घटना में गम्भीर रूप से घायल स्कूटर-सवार हॉस्पिटल में एडमिट हुआ था। सीनियर सर्जन को कॉल दी गई थी। आनन-फानन ऑपरेशन की तैयारी की गई थी। इंटर्न के रूप में कविता को असिस्ट करना था।

'यहाँ बेहोश होकर मत गिरिएगा, डॉ. कविता, वर्ना यह मरीज़ बेचारा बेमौत मारा जाएगा।' डॉ. श्याम ने उसे चेतावनी दी थी।

'डोंट वरी डॉक्टर, अटेंड टु योर ड्यूटी।' कविता के स्वर में तीखापन था।

दूसरे दिन मरीज़ की बाँह एम्प्यूटेड की जानी थी। मानव हाथ पर आरी चलती देखना सहज नहीं होता, पर चिकित्सकों के लिए यह सामान्य बात थी। सड़े-गले अंगों को रखने से क्या फायदा? श्याम ने दृष्टि उठा सामने खड़ी कविता को देखा था। ओठों को अन्दर भींचे कविता दृढ़ता से खड़ी, घायल की बाँह कटती देख रही थी।

इंटर्नीज़ की ब्लीप पर फर्स्ट-कॉल होती थी। उस दिन पूरे दिन ड्यूटी करने के बाद कविता को भूख का एहसास हुआ था। रश्मि को साथ ले वह कैंटीन चली गई थी। व्यस्तता के बीच ब्लीप की मद्धिम पड़ती बैटरी पर कविता का ध्यान भी नहीं गया था।

वापस वार्ड पहुँचने पर सबके सामने ही डॉ. श्याम ने कविता को बुरी तरह फटकारा था-

'यहाँ मरीज़ की जान चली जाए, आपको क्या मतलब ? आप तो रसगुल्ले उड़ाइए।'

'लेकिन मुझे तो ब्लीप नहीं मिली थी।'

'ब्लीप कैसे सुनतीं हँसी-मज़ाक के वक्त कान सुन्न जो हो जाते हैं। अगर काम के लिए सीरियस नहीं थीं तो मेडिकल प्रोफेशन में आई क्यों ?'

'मैंने कहा न सर, ब्लीप नहीं मिली।'

'एक बार नहीं तीन बार कॉल किया था, झूठे बहानों से मुझे सख्त नफ़रत है।'

'मैं भी झूठ नहीं बोतली, सर।'

'ओ के मैं ही गलत हूँ। नाउ प्लीज़ गो टु बेड नम्बर सेवन, अब तो सुन पा रही हैं न ?'

अपमान से कविता का मुँह लाल हो आया था। किसी तरह अपने को संयत रख, वह बेड नम्बर सात की ओर चली गई थी। ब्लीप पर दृष्टि पड़ते ही कविता चौंक गई थी। बैटरी खत्म हो चुकी थी, उस पर ध्यान न देना, उसकी गलती हो सकती थी, पर सबके सामने इस तरह फटकारना

क्या ठीक था?

कविता के हटते ही रजिस्ट्रार राकेश ने श्याम को समझाया था–

'यार तू ज़्यादा ही बोल गया, इंटर्नशिप में हमसे भी तो गलतियाँ हो जाया करतीं थीं।'

'पर हम अपनी ग़लती मान भी लेते थे, यूँ बहस तो नहीं करते थे। न जाने अपने को क्या समझतीं हैं, ये लड़कियाँ, ऑलवेज प्रिवलेज्ड क्लास।'

'वह तो ठीक कहा। जानता नहीं कविता शहर के एम.एल.ए. की बेटी है।'

'एम.एल.ए. की बेटी होने का ये मतलब तो नहीं कि यहाँ भी रोब जमाए। ये राजनीतिज्ञ ही नहीं, उनके बच्चे भी अपने को राजा से कम नहीं समझते।'

थोड़ी देर बाद रश्मि पहुँची थी। 'सर, कविता की ब्लीप की बैटरी खत्म हो गई थी, वह उसे बदलवाने गई है। आपको मेसेज देने को कहा है।'

'अपनी ग़लती पर परदा डालने के लिए अच्छा बहाना बनाया है' श्याम के स्वर के व्यंग्य पर रश्मि तुनक गई थी।

'बहाना बनाने की क्या ज़रूरत थी, सर ? मैं उसके साथ थी, हमें ब्लीप नहीं मिली क्योंकि बैटरी डाउन थी – यही सच है।'

'दूसरों पर विश्वास करना सीखो डॉ. श्याम। पुअर गर्ल – क्या कुछ नहीं कह डाला तुमने ? वॉर्ड ब्वॉय तक सुन रहे थे।' राकेश का स्वर कविता के प्रति सहानुभूतिपूर्ण था।

'वैसे भी सर, पिछले दो दिनों से कविता को फीवर चल रहा है। दवाइयाँ खाकर पूरी ड्यूटी करती है। उसकी सिंसियरिटी पर शक करना ठीक नहीं।' रश्मि का स्वर अभी भी तीखा था।

श्याम चुप रह गया था। जब से कविता वार्ड में आई थी, श्याम उस पर व्यंग्य करता रहा। पूरी सतर्कता और ज़िम्मेदारी के साथ अपनी ड्यूटी निबटाने के बाद जब और इंटर्नीज़ आराम के लिये हॉस्टल भागते, कविता मरीज़ों के पास रुक जाया करती थी। कुछ दिन पहले वॉर्ड से जब एक औरत को दूसरे वॉर्ड में भेजा जाने लगा तो वह रो पड़ी थी–

'डॉक्टर साहिब, हम इसी वॉर्ड में रहेंगे। कविता डॉक्टर हमारी बेटी जैसी हैं।' बड़ी मुश्किल से उसे भेजा जा सका था। कविता ने वादा किया था, वह उसे रोज़ देखने जाया करेगी।

वार्ड के किसी भी काम को निबटाने के लिए कविता सदैव तत्पर रहती। नए मरीज़ों का चेक-अप करती, कविता को देखना एक अनुभव होता था। मरीज़ की केस-हिस्ट्री वह इतनी अच्छी तैयार करती कि सीनियर डॉक्टर भी उसकी तारीफ़ किए बिना नहीं रहते थे।

कुछ दिनों को जब उसकी ड्यूटी इंटेंसिव केयर यूनिट में लगी तो कविता जैसे सोना ही भूल गई थी। साथ की लड़कियाँ हँसी उड़ाती तो वह जवाब देती–

'जब यहाँ हमसे जागने की अपेक्षा की जाती है तो सोएँ क्यों ?'

सीरियस केस आते ही कविता सीनियर डॉक्टर के साथ काम करती, रोग की पूरी जानकारी लेती जाती थी। उसके उत्साह और लगन से प्रभावित हो डॉ. नेगी ने सबके सामने कहा था –

'डॉ. कविता इज दि मोस्ट रिमार्केबिल गर्ल ऑफ दिस बैच।'

कॉलेज की प्रतियोगिताओं में कविता को सर्वाधिक पुरस्कार मिले थे। साथ के विद्यार्थी उसे छेड़ते –

'कविता जिस प्रतियोगिता में भाग ले रही हो उसमें हमारा पार्टिसिपेशन ही बेकार है।'

ऐसे कविता खून देखकर घबरा जाती थी, पर जिस दिन से डॉक्टर श्याम ने उसकी इस कमज़ोरी की हँसी उड़ाई, कविता ने अपनी घबहराहट पर यूँ विजय पा ली, मानों वह जन्म से ऐसे वातावरण में

रही-पली है; जहाँ हाथ-पाँव काटना मामूली बात हो।

डॉ.श्याम सचमुच अपनी ग़लती महसूस कर रहे थे। आधे-घंटे बाद सूखे मुँह के साथ जब कविता वॉर्ड में पहुँची तो श्याम ने उसके निकट जा कहा था–

'आई एम सॉरी – मुझे पता नहीं था, ब्लीप की बैटरी डाउन थी।'

अनुत्तरित कविता से फिर श्याम ने कहा था–

'मुझसे सचमुच ग़लती हो गई, मुझे माफ़ कर दो, कविता।'

'इट्स ओके, सर। ग़लती मेरी थी। मुझे बैटरी चेक करनी थी।'

'इतनी व्यस्तता में ऐसी ग़लती हो जाना मामूली बात है। मुझे अपना आपा नहीं खोना चाहिए था।'

'आप बेकार परेशान हैं। सीरियस केस के लिए कॉल पर न पहुँचने से आपका मूड खराब होना ठीक ही है।'

'चलिए एक कप कॉफी ले लें। आप बहुत टेंशन में हैं।'

'नो थैंक्स सर। मैं बिल्कुल टेंशन में नहीं हूँ। अभी मुझे बेड नम्बर सेवन की ब्लड रिपोर्ट कलेक्ट करनी है।'

'ब्लड- रिपोर्ट तो वॉर्ड ब्वाय भी कलेक्ट कर सकता है। कॉफी नहीं तो कोल्ड ड्रिंक चलेगी ?'

'नो थैंक्स, मैं जो निर्णय ले लेती हूँ, वह बदलता नहीं सर, प्लीज़ एक्सक्यूज़ मी।'

डॉ. श्याम को वहीं खड़ा छोड़, कविता ब्लड-रिपोर्ट कलेक्ट करने चली गयी थी।

उस हॉस्पिटल में इंटर्नीज़ से बहुत कठिन काम लिये जाते थे। हॉस्पिटल मैंनेजमेंट के विचार में अनुभव से डॉक्टर अधिक जान-सीख सकते हैं। बात सही भी थी, यहाँ के डॉक्टर सर्वत्र प्रशंसा पाते थे। कड़ी मेहनत के बीज जो यहाँ बोए जाते, वह जीवन भर काम आते।

उस दिन के बाद से डॉक्टर श्याम कविता के प्रति विशेष सदय हो गए थे। डिपार्टमेंट की पिकनिक, पार्टीज़ में कविता का साथ उन्हें बहुत अच्छा लगता था। कुछ ही दिनों में वह जान गए थे, प्रखर बुद्धि के साथ कुछ विशेष करने की तमन्ना कविता के रक्त में बहती थी।

पिता के वैभव का कविता ने कभी प्रदर्शन नहीं करना चाहा। शुरू में दो-तीन बार उसे लेने

चमचमाती कार और वर्दीधारी ड्राइवर आया, पर बाद में आम लड़कियों की तरह कविता ने भी बस में ही जाना पसंद किया था।

श्याम सर्जरी में एम.एस. कर रहा था और कविता का सपना कार्डियोलॉजिस्ट बनने का था। कविता अपने विषय पर जब अधिकारपूर्वक बात करती तो श्याम हँस पड़ता।

'अभी इंटर्नशिप तो पूरी करो, कॉर्डियोलॉजिस्ट बनना आसान नहीं। मेरे ख्याल में तो तुम प्रसूति विभाग में चिकित्सा के लिए उपयुक्त हो। लड़कियों के लिए यही विभाग ठीक है, समझीं।'

'रहने दीजिए जनाब, कॉर्डियोलॉजिस्ट सिर्फ लड़कों का सब्जेक्ट नहीं है। मैं दिखा दूँगी, लेडी डाक्टर इस डिपार्टमेंट के लिए कितनी सूटेबल हो सकती हैं।'

'क्यों नहीं, सुन्दर मुखड़े देख, दिल बेचारा यूँ ही बेमौत मारा जाएगा।'

'चलो तुमने मुझे सुन्दर तो माना।' कविता भी मज़ाक पर उतर आती।

कविता के जन्मदिन पर बहुत सबेरे श्याम ने फूलों के गुलदस्ते के साथ बधाई दी थी।

'थैंक्स ! आपको कैसे पता मुझे लाल लिली बहुत पसंद हैं?'

'फूलों के बीच पला-बढ़ा जो हूँ। कैसे ग्राहक, कैसे फूल चाहेंगे, देखते ही पता लगा सकता हूँ।'

'मतलब फूलों के व्यवसायी हैं आप ?'

'जी एकदम ठीक पहचाना। शहर में हमारी बहुत साख है, फ्लॉरिस्ट ठहरे हम लोग।'

'ओह रियली, मार्वलेस ! यू नो, आई लव फ्लॉवर्स।'

'खुद भी तो आप फूल जैसी हैं।'

'नहीं मैं कविता ही ठीक हूँ।'

उस दिन के बाद दोनों पास आते गए थे। श्याम जब भी अपने घर जाता लौटते समय कविता को लिली, रजनीगंधा या गुलाबों के फूल लाना कभी नहीं भूलता।

उन फूलों के बीच दोनों के सपने खिलते चले गए थे।

'तुम्हारा गार्डेन देखने का बहुत जी चाहता है, कब ले चलोगे मुझे। इतने ढेर से रंगों के बीच तुम खो नहीं जाते श्याम ?'

'ज़रूर ले चलूँगा, एम.एस. पूरा कर लेने दो, उसके बाद हम दोनों चलेंगे।'

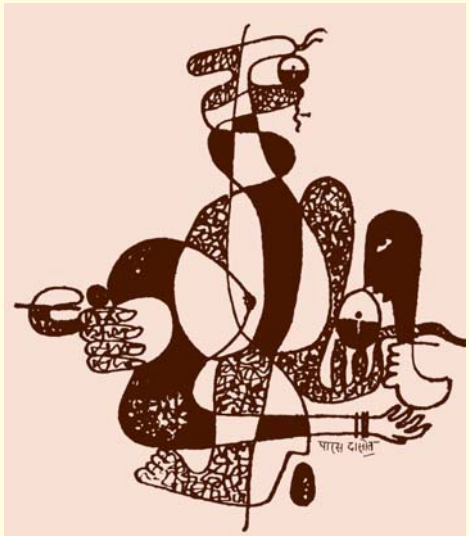

'कोई फ़ोटो नहीं है श्याम, जब तक वहाँ नहीं पहुँचती, उसी से संतोष कर लूँ।'

श्याम की दिखाई फ़ोटो को कविता मुग्ध ताकती रह गई थी। इतने रंगों के फूलों की तो वह कल्पना भी नहीं कर पाई थी।

'ओह श्याम, तुम कितने लॅकी हो, इन फूलों के बीच रहना कितना अच्छा लगता होगा। एक बात बताओ, तुम्हारा माली कौन है, उसे तो पद्मश्री दी जानी चाहिए। मैं पापा से कहूँगी यहाँ के राजभवन में उसे आमंत्रित किया जाए। यहाँ भी ऐसे ही फूल लगवाऊँगी।'

'मेरा माली-वहाँ तो कई माली हैं, किसका नाम बताऊँ ?' श्याम हड़बड़ा सा गया था।

'अरे कोई हेड माली तो होगा उसी की गाइडेंस में तो ये सब काम होता होगा ?'

'हेड माली - नहीं मुझे उसका नाम याद नहीं। चलो एक कप कॉफी हो जाए।'

'इस वक्त कॉफी ?' कविता ताज्जुब में पड़ गई थी। कॉफी पीने का उनका समय बँधा हुआ था।

'हाँ बस मूड हो आया, चलें ?'

कॉफी पीता श्याम जैसे कहीं खो सा गया था।

'क्या बात है, आर यू ओ के ?' श्याम के उखड़े मूड को देख कविता ने पूछा था।

'परफेक्टली ओ के। बस ज़रा सिर में दर्द सा हो गया था।'

तीन चार दिन बाद कविता बड़े अच्छे मूड में आयी थी-

'दो दिन के लिये बाहर जा रही हूँ, बाय कहने आयी थी।'

'क्या बात है ? बड़ी खुश दिख रही हो। कहीं सगाई कराने तो नहीं जा रही हो ?' श्याम ने उसे चिढ़ाया था।

'एकदम ठीक पकड़ा, सचमुच एंगेजमेंट के लिए ही जा रही हूँ।' कविता ने भोला सा मुँह बना कर जवाब दिया।

'व्हॉट नॉनसेंस, तुम्हारी एंगेजमेंट कैसे हो सकती है ?'

'क्यों नहीं हो सकती, क्या इतनी बुरी लगती हूँ देखने में ?'

'वो बात नहीं है, पर तुम जानती हो हम एक दूसरे के कितने पास आ चुके हैं।' श्याम अपनी बात स्पष्ट नहीं कर पा रहा था।

'पास तो हम हमेशा रहेंगे, सगाई से उसमें क्या फर्क आने वाला है?'

'सगाई और शादी दूसरे से करने के बाद भी, हम पास रहेगें ?'

'क्या मतलब है तुम्हारा ? देखो कविता, मुझे ऐसे मज़ाक बिल्कुल पसंद नहीं हैं समझीं।

'मज़ाक तो तुम कर रहे हो, अरे भई मैं अपने कज़िन की सगाई पर जा रही हूँ। दो दिन बाद लौट आऊँगी।'

'ओह गॉड, तुमने तो कुछ देर को सचमुच ही मेरी जान ले डाली थी।' श्याम ने आश्वस्ति की साँस ली थी।

'ठीक है लौट कर मिलते हैं। बाय।'

कविता के बिना दो दिन श्याम ने बेचैनी में काटे थे। इन कुछ दिनों में उसका पूरा जीवन ही कवितामय हो उठा था।

वॉर्ड से लौटकर श्याम अपने कमरे में पहुँचा ही था, किसी ने दरवाज़े पर दस्तक दी थी। 'कम इन-।'

दरवाज़ा ठेल हाथ में लाल गुलाबों का गुलदस्ता लिए कविता अन्दर आ गई थी।

'ओह कविता - तुम आ गई। मैं तुम्हें कितना मिस करता रहा।'

'ठहरो श्याम, पहले ये तो लो।' हाथ में पकड़े गुलाब थमाती कविता ने अपनी ओर तेज़ी से बढ़ रहे श्याम को रोक दिया था।

'ओह लवली रोज़ेज़ - थैंक्स।'

'इनकी खुशबू तो पहचानते ही होगे।'

श्याम ने फूलों से सिर उठा कविता को देखा था।

'तुम्हारे बाग के गुलाब, तुम्हीं नहीं पहिचान

पाए ?'

'मेरे बाग़ !'

'क्यों कहीं कोई ग़लती हो गई ? तुम्हारी फ्लॉरिस्ट शॉप से लाई हूँ।' फटी-फटी दृष्टि से श्याम कविता को ताकता रह गया।

'तुम - तुम इतने छोटे हो सकते हो, मैं सोच भी नहीं सकती थी श्याम।' आवेश में कविता की वाणी रुद्ध हो गई थी।

'क्या हुआ, कविता आराम से बैठो। ये पानी पी लो।'

श्याम के हाथ में पकड़ा पानी का गिलास कविता ने झटक कर दूर फेंक दिया।

'तुम बहुत बड़े फ्लॉरिस्ट हो न, श्याम तुम्हारे गार्डेन में न जाने कितने माली काम करते हैं। यू चीट , लॉयर।'

'मुझे माफ़ कर दो कविता।'

'किस बात की माफ़ी माँग रहे हैं डॉ. श्याम ?' व्यंग्य कविता के ओठों पर फैल गया था।

'यही कि मेरी कोई फ्लॉरिस्ट शॉप नहीं मैं एक गरीब इंसान हूँ।'

'ठीक कह रहे हो, डॉ. श्याम। तुम एक महत्त्वाकांक्षी, कर्मठ और मेरे ख्याल से एक महान् इंसान के बहुत गरीब बेटे हो।'

'मेरी बात समझने की कोशिश करो कविता - तुम इतने बड़े घर की लड़की हो, भला कैसे बताता मेरे पिता एक इंस्टीट्यूट के हेडमाली हैं - तुम्हें खो देने का साहस नहीं कर सका, मुझे माफ़ कर दो, कविता।'

'जिस व्यक्ति ने मिट्टी से इतने सुन्दर फूल उगाए, अपने ही बीज को सँवारने में कहाँ गलती कर गया ? एक लड़की को पाने के लिए अपने पिता को ही नकार दिया, डॉ. श्याम ?'

'कविता।'

'नहीं श्याम, इसके लिए कोई एक्सप्लेनेशन नहीं चलेगा। काश! तुमने बताया होता, तुम अपने पिता के सपनों के गुलाब हो। मिट्टी में गिरी उनकी पसीने की बूँदों ने तुम्हारा पोषण किया है, तो मैं तुम्हें सिर-माथे लेती, पर आज तुम अपने झूठ के कारण मेरी निगाह में इतने नीचे गिर गए हो।' बोलते बोलते आवेश से कविता का चेहरा तमतमा आया था।

'मैं प्रायश्चित करने को तैयार हूँ, मुझे सज़ा दो, कविता।'

'तुम्हारी सज़ा यही है, डॉ. श्याम, जिसे तुमने चाहा, वह तुम्हें कभी न मिले। मैं हमेशा के लिए जा रही हूँ।'

'ओ! क्या ये तुम्हारा मुझसे अलग होने का बहाना नहीं, कविता ? मेरी सच्चाई जान, मुझे स्वीकार करने का तुम्हारा साहस शेष नहीं रह गया है।' बौखलाहट में श्याम को यही जवाब सूझा था।

श्याम के वाद -प्रतिवाद के लिए कविता रुकी नहीं थी। यू.के. की एक छात्रवृत्ति ले, वह शहर छोड़ चली गई थी। एक उसाँस के साथ श्याम ने अपनी कहानी खत्म की थी।

'ओह ! शायद कविता कहीं जल्दबाजी कर गई। काश ! मैं उससे मिल पाती शिवानी गम्भीर हो उठी थी।'

'नहीं ग़लती मेरी ही थी, जिस पिता ने मुझे यहाँ तक पहुँचाया, उसे भुला दिया। बारहवीं तक वजीफ़ों के सहारे पढ़ा, मेडिकल की प्रवेश-परीक्षा में क्वालीफाई करने पर बाबू की आँखों में ढेर सारे गुलाब खिल आए थे। इंस्टीट्यूट के प्रिंसिपल के पाँवों पर सिर धर दिया था बाबू ने।'

'हमार बेटवा डॉक्टर बनी साहेब, आपकी मदद चाही। जिनगी भर गुलामी कर लेब, मुला एकर मदद कर दें साहेब।' बाबू की सेवा ध्यान में रख, प्रिंसिपल साहब ने इंस्टीट्यूट की ओर से मेरी पढ़ाई की व्यवस्था कराई थी।

इंटर्नशिप के बाद सब आसान होता गया था, जितने पैसे मिलते काम चल जाता था।

'तुमने यह सब कविता को क्यों नहीं बताया, श्याम ?'

'वही तो मेरा अक्षम्य अपराध बन गया, शिवानी। संयोग इसे ही तो कहते हैं, शिवानी के कज़िन की सगाई उसी इंस्टीट्यूट के प्रिंसिपल की बेटी से ही होनी थी। शायद लाल लिली के फूल देखते ही उन्हें वह पहिचान गई थी, प्रिंसिपल साहब ने जब कविता को सबसे इंट्रोड्यूस कराया तो बाबू के बेटे का नाम गौरव से लिया गया था।'

'हमारे हेड माली का बेटा वहाँ सर्जन है, डॉक्टर श्याम इनका असली फूल तो वही है।'

'ज़रा सोचो, कविता को यह कितना बड़ा धक्का लगा होगा, शिवानी।'

'तुम्हारे पिताजी को इस बारे कुछ पता नहीं है, श्याम ?'

'बस इतना जान सके, मेरे साथ की लड़की थी कविता। उसने उन्हें बहुत आदर-मान दिया था। लौटते समय बाबू के पाँव छू, उन्हें चौंका दिया था। उसे आशीषते बाबू नहीं थकते, शिवानी।'

'पर इस तरह कब तक चलेगा श्याम ?'

'अपनी भूल का प्रायश्चित कर रहा हूँ। बाबू के लिए एक छोटी सी फूलों की दूकान शहर में खोल दी है। बाबू दूकान के प्रति बहुत उत्साहित हैं, पर मेरी उदासीनता उन्हें बहुत कष्ट देती है, शिवानी।'

'तो उन्हें तुम असलियत क्यों नहीं बता देते, श्याम ?'

'वह बता पाने के लिए कविता का इंतज़ार है, शिवानी।'

'तुम समझते हो वह वापिस आएगी ?'

'वह ज़रूर आएगी शिवानी, मैं उसे अच्छी तरह से जानता हूँ।' दृढ़ स्वर में श्याम ने उत्तर दिया था।

'भगवान तुम्हारा विश्वास सच करें, श्याम।' श्याम के हाथ पर अपना हाथ धर शिवानी ने आशीर्वाद सा दिया था।

❐

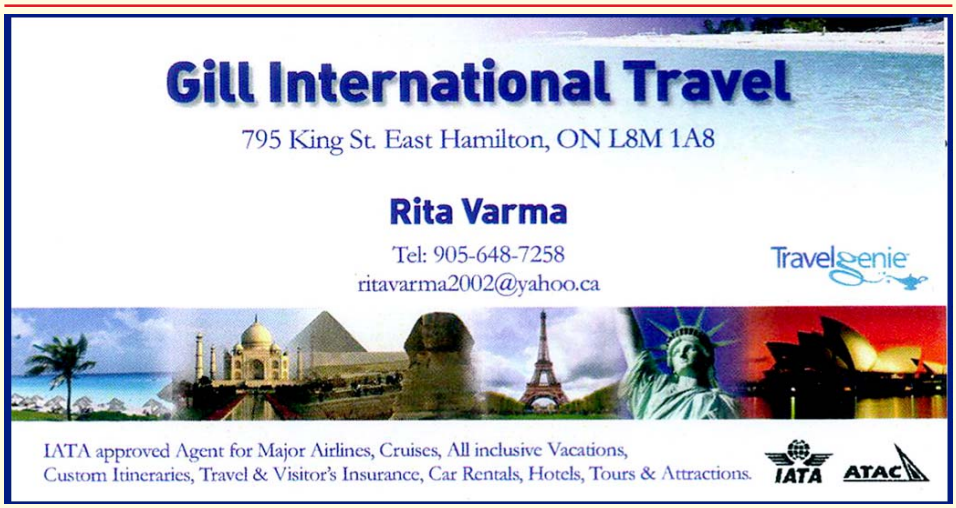

Beacon Signs 1985 Inc.

7040 Torbram Rd. Unit # 4, Mississauga, ONT. L4T 3Z4

Specializing In:

Illuminated Signs awning & pylons

Channel & Neon letters

Banners

Architectural signs

VEHICLE GRAPHICS

Engraving

Silk screen

Silk screen

Design Services

Precision CNC cutout plastic, wood & metal letters & logos

Large format full Colour imaging System

SALES – SERVICE - RENTALS

Manjit Dubey

दुबे परिवार की ओर से हिन्दी चेतना को बहुत बहुत शुभकामनायें

Tel: (905) 678-2859 Fax: (905) 678-1271

E-mail: beaconsigns@bellnet.ca

पीला रंग आशा का

उषादेवी कोल्हटकर

उषादेवी कोल्हटकर

जन्म: 24 मार्च 1948, अहमदनगर, महाराष्ट्र।

शिक्षा: पीएच.डी समाजशास्त्र, पूणे विद्यापीठ, पीएच.डी समाजशास्त्र (मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी, यूएसए)।

प्रकाशित कृतियाँ: कहानी संग्रह:अंधेरी सुरंग में, बटर टाफी और बूढ़ा डाक्टर, फूलों का घर नहीं होता। उपन्यास:जमी हुई बर्फ़, खोया हुआ किनारा, प्रलय के पार। अनुभव -आलेख: चाबी का गुड्डा, अमेरिका, कितना बड़ा-कितना छोटा, मराठी में भी दो कथा संग्रह, तीन उपन्यास, दो अनुभव आलेख की पुस्तकें आ चुकी हैं।

पुरस्कार एवं सम्मान: पुणे विश्वविद्यालय में एम.ए (समाजशास्त्र) में प्रथम श्रेणी के साथ सर्वप्रथम स्थान पाने पर 'डॉ. राधाकृष्ण' पुरस्कार से सम्मानित। श्रेष्ठ समाजशास्त्रीय अनुसन्धान तथा समाज सेवा के लिए कैम्ब्रिज (इंग्लैण्ड) द्वारा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर दिए जाने वाले प्रमाणपत्र से सम्मानित। पुणे महा नगर पालिका द्वारा - गौरवपदक। मराठी पुस्तक अमेरिका, किती मोठी किती छोटी महाराष्ट्र ग्रन्थोत्तेजक संस्था, पुणे द्वारा पुरस्कृत, बृहत महाराष्ट्र मंडल, उत्तर अमेरिका द्वारा 2011-साहित्य संस्कृति एवं कला पुरस्कार से सम्मानित।

संपर्क:

3345 73rd st, Jackson Hts NY 11372-1105

ईमेल:

vijaykolhatkar@attglobal.net

कुदरत की गोद में छिपे हुए, एक शानदार देहात में एक दादी माँ -सी बूढ़ी औरत रहती थी। वैसे देखा जाए तो दादी माँ अकेली थी परन्तु गाँव के सारे छोटे-बड़ों को अपने रिश्तेदारी-सा बेशुमार प्यार देने की ताकत थी उसके दिल में। दादी माँ का छोटा-सा घर, घर के सामने बगीचे में अलग-अलग रंगों के सिर्फ गुलाब के फूलों के पौधे। दादी माँ की दृष्टि से घर का सबसे महत्त्वपूर्ण कमरा था- उनकी स्टडी यानी उनका अध्ययन-कक्ष। अध्ययन-कक्ष की खिड़की खोलते ही नन्हे-से बगीचे का हर पौधा दिखाई देता। उस कमरे में भी एक टेबल, कुर्सी, आराम-कुर्सी टेबल पर लिखने का सामान, अलग-अलग डिज़ाइन के, आकार के रंगबिरंगे कागज़, लिफ़ाफ़े, टिकट रखने के लिए पियानो के आकार की छोटी-सी लकड़ी की पेटी। एक मज़बूत अलमारी में 'लाइफ इन लेटर्स' इस आशय की, महशूर व्यक्तियों के पत्र व्यवहार सम्बन्धी, दादी माँ द्वारा जमा की हुई कई किताबें।

घर के ज़रूरी काम ख़त्म करने के बाद, बाकी समय दादी माँ अपना मनचाहा शौक पूरा करने में यानी कि पत्र लिखने में बिताती थी। पत्र-मैत्री था उनका लाडला शौक और इस शौक की खातिर लिखे हुए तीन-चौथाई पत्र, आज के फौजी और भूतपूर्व सैनिकों के लिए होते थे। कई फौजी-नियमित रूप से पत्रों के जबाब भी देते थे। दूसरे महायुद्ध के खत्म होने के बाद, एक पत्रमित्र-सैनिक, दादी माँ से मिलने आया था। उसने दादी माँ के सामने शादी का प्रस्ताव भी रखा था। दादी माँ ने प्रतिवाद तो नहीं दिया, परन्तु उस फौजी की तस्वीर सम्भालकर, एक फ्रेम में लगाकर, लिखने के टेबल पर रख दी। रोज़ पत्र लिखने का काम शुरू करने से पहले, दादी माँ, उस बाँके नौजवान की तस्वीर पर जमी धूल रेशमी रुमाल से पोंछती थी। उन चन्द क्षणों में दादी माँ की परछाई उस काँच में दिखाई देती। बस यहाँ तक ही सीमित था दोनों का नज़दीकी, कोमल रिश्ता।

उस दिन सुबह रोज़ की तरह, दादी माँ ने बगीचे में घूमकर पौधे को पानी दिया। खिले हुए दो-तीन गुलाब आहिस्ता से तोड़े लिए। घर में कदम रखने जा ही रही थी कि पास-पड़ोस के छोटे बच्चों ने उन्हें घेर लिया। बच्चों की उत्साहपूर्ण बातों से वह समझ गई कि खाड़ी में जिन सैनिकों ने हिस्सा लिया है, उनमें से इस प्रदेश से गए हुए सौ सैनिकों की टुकड़ी को, गाँव के स्कूल के लड़के-लड़कियों ने गोद लिया है। उन सैनिकों को टूथपेस्ट, टूथब्रश, छोटे तौलिये इत्यादि उपयुक्त चीज़ें भेजने के लिए ये बच्चे नियमित रूप से अपनी पॉकेटमनी से पैसे देगें। अपने हाथों से बनाई चीज़ें, चित्र बेचकर पैसा इकट्ठा करेंगें। इन सौ सैनिकों को, कम-से-कम हफ्ते में एक बार, दादी माँ पत्र लिखकर भेजे, यह इच्छा लेकर सैनिकों के यूनिट का पता, उनके नामों की सूची, कागज़, लिफ़ाफ़े और टिकटों के लिए पैसे लेकर बच्चे आये थे और दादी माँ से लिपटकर अपनी बात मनवा रहे थे। बच्चों की नि:स्वार्थ भावनाएँ देखकर दादी माँ ऐसे भीगी कि ज्यों उसने किसी तीर्थ का स्नान किया हो।

'दादी माँ, स्कूल के बाद हम सीधे तुम्हारे पास ही आएँगें। तुम्हारे ख़त हम पोस्ट करने जाएँगे। तुम पोस्ट करने के लिए चलकर मत जाना, तुम थक जाओगी।' अच्छा ! तो हफ्ते में सौ ख़त लिखने का प्यार भरा आदेश देने वाले बच्चों को, दादी माँ की थकान का एहसास भी थी। यह सच है कि बच्चों के भाव-जगत के हिसाब से निराले होते हैं।

दादी माँ अध्ययन-कक्ष में लौट आई और बच्चों द्वारा गोद लिए हुए सैनिकों को पत्र लिखने लगी। न जाने क्यों, कागज़ पर लिखे हुए अक्षरों में आज उन्हें इन्द्रधनुष पर झूलती हुई तितलियाँ दिखाई दे रही थीं। हर ख़त के आखिर में,'यह आपके आज़ाद देश की मिट्टी में खिली हुई खूबसूरती का प्रतीक है !' यह वाक्य लिखकर दादी माँ, गुलाब की खुशबूदार पंखुड़ियाँ रखती है, यह बात बच्चों के ध्यान में आयी। बस, यह बात समझने की देर थी कि गाँव में जिनके बगीचों में गुलाब के पौधे थे, उनसे गुलाब के फूल माँगकर लाना और दादी माँ की स्टडी में, फूलदानों में फूलों को सजाकर रखने का नशा-सा बच्चों पर सवार हो गया। सैनिकों को

लिखे हुए ख़त जिस पत्रपेटी में पोस्ट किये जाते थे, उस पत्रपेटी को बच्चों ने पीली, नीली, सफेद और लाल रंग की रेशमी रिबनों से सजाया। बच्चे जानते थे कि नीला, लाल और सफेद रंग, अमेरिका के राष्ट्रध्वज में समाये हुए हैं। पीला रंग, आशा तथा विश्वास का प्रतीक है, यह बात दादी माँ ने बच्चों से कही थी। इसलिए बच्चों ने ईमानदारी से पत्रपेटी को उन रंगों की रेशमी रिबनों से सजाया। साढ़े चार साल के स्पंकी ने अपने टेड़े-मेढ़े अक्षरों में लिखा हुआ बोर्ड भी पत्रपेटी पर लगाया था और अक्षर थे,'यह पत्रपेटी हमारे सैनिक दोस्तों के पत्र लेकर जाती है।'

एक दिन गोलमटोल स्पंकी,दादी माँ के बगीचे में रखी पत्थर की बत्तख़ की पीठ पर सँभालकर खड़ा हुआ। कोशिश करके उसने दादी माँ की स्टडी की, खिड़की की सलाखें पड़कर उन्हें पुकारा। दादी माँ ने दरवाज़ा खोला। स्पंकी ने खुद बनाए हुए चित्र का कागज़ दादी माँ को दिया और पच्चीस सेंट की माँग की। अगर दादी माँ उसे और दस सेंट दे तो वह उसे दो कोरे कागज़ भी देने को तैयार था। दादी माँ ने चित्र की ओर निगाह डाली। कागज़ के ऊपर के, हिस्से में टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में लिखा था,'युद्ध बुरा है' और नीचे ऊँट, बकरी को आइसफ्रूट दे रहा है; ऐसा चित्र था। मधुर मुस्कुराते हुए स्पंकी ने कहा, 'सच पूछो तो मुझे टैंक बनाना था, परन्तु ऊँट बन गया।' दादी माँ के दिए हुए पचीस सेंट टिकट-फंड के डिब्बे में डालकर, 'दादी माँ, दस सेंट निकालकर रखना, घर से दो कोरे कागज़ लेकर आता हूँ' कहते हुए, अपनी बेस बॉल कैप सर पर ठीक से रखते हुए वह नन्हा -सा फौजी दौड़ता हुआ निकल पड़ा और देखते-देखते आँखों से ओझल भी हो गया। दरवाज़ा बंद करते हुए दादी माँ ने देखा, बगीचे में रखी, पत्थर की पीठ पर स्पंकी की नीले रंग की दूध की बोतल पड़ी थी और बोतल खरगोश के आकार की थी।

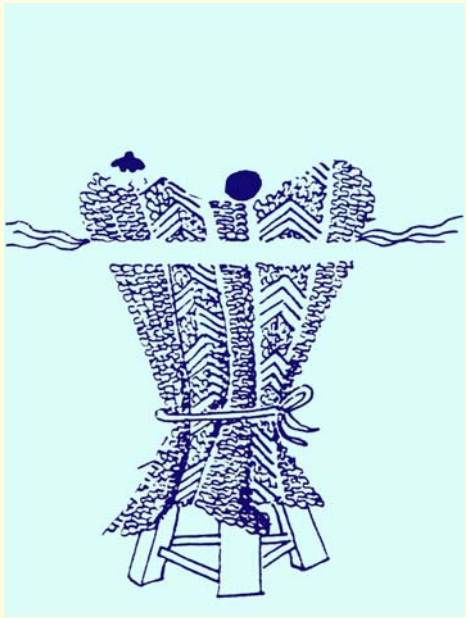

छुट्टी के दिन ये छोटे बच्चे, घर से एक छोटी मेज़ लाकर, पत्रपेटी के पास छोटा-सा 'लेमनेड स्टैंड' सजाते और माँ से तैयार करवाया नींबू का शरबत आने-जाने वाले राहगीरों को बेचकर 'सैनिक-निधि' के लिए पैसे जमा करते। दादी माँ द्वारा बनाई हुई कागज़ की टोपियाँ पहनकर ये नन्हें वेटर इस अदब से, गाँववालों से शरबत खरीदने का आग्रह करते कि शायद ही कोई उन्हें न कह

पाता। राजमुकुट के आकर की कागज़ की टोपी पहनकर स्पंकी अपनी मोहक मुस्कान के साथ जब थैंक्यू कहता; तब खाली शरबत के प्याले में टिप के पैसे भी खनखनाते। बच्चों का असीम उत्साह देखकर, गाँववालों का भी उत्साह बढ़ने लगा। गाँव के सारे पेड़, घर के हर दरवाज़े और खिड़की पर पीली रिबनें बाँध दी गईं हमारे सैनिक युद्ध में कामयाब होकर सुरक्षित घर लौटें, इस आशा और विश्वास का वे पीली रिबनें प्रतीक थीं। कुछ सैनिकों की ओर से दादी माँ की भेजी चिट्ठियों के जबाब आने लगे। छोटे बच्चों द्वारा भेजी हुई भेंट के लिए धन्यवाद के पत्र आने लगे। सैनिकों की तस्वीरें आने लगीं। तस्वीरों का अलबम बनाया गया। युद्ध भूमि से आए पत्र करीने से फाइल में रखे गए। हर शाम, दादी माँ के घर की सीढ़ियों पर बैठकर वे पत्र पढ़ना, बच्चों के लिए प्रार्थना की तरह ज़रूरी हो गया।

दादी माँ की स्टडी में गुलाब के फूलों का भंडार, बच्चों का लगातार आना-जाना, न देखे हुए सैनिकों से जी-जान से प्यार करने वाले इन नन्हें बालकों को देखकर बड़े-बूढ़ों के दिल में उमड़ती उमंगें, जागी हुई उत्तेजना- पूरा गाँव जैसे कुछ अद्भुत, आसामान्य अनुभव कर रहा था।

पूरे 43 दिनों के बाद खाड़ी युद्ध ख़त्म हुआ। धीरे-धीरे अमेरिकन सैनिक अपने वतन लौटने लगे। बच्चों का नशा अब तक उतरा नहीं था, दादी माँ का पेन अभी तक रुका नहीं था और उसी दौरान वह चिट्ठी आई। बच्चों के, दादी माँ के पत्र-मित्र और सहेलियाँ, वे सौ सैनिक, दादी माँ, बच्चे तथा गाँववालों से मिलने आ रहे थे। जिन छोटे लड़के-लड़कियों ने उन्हें गोद लिया; उनसे मिलने की उनमें उत्कट इच्छा थी। उस दिन, हर दिन की तरह, पोस्टमैन के पीछे, बच्चों की बारात भी दादी माँ के घर पहुँच गई। दादी माँ ने चिट्ठी खोली और सब को पढ़कर सुना दी। सैनिकों के आगमन का दिन और समय का पता चलते ही बच्चों का झुण्ड, मस्त बछड़ों-सा दौड़ता निकल गया। रस्ते में मिले हर किसी का हाथ जबरदस्ती हाथ में लेकर,'हाय, हेल्लो' कहते हुए, हर दरवाज़े की डोरबेल बजाते हुए यह उत्साह का तूफ़ान पूरी रफ्तार से गाँव का चक्कर पूरा कर आया और कुछ ही घंटों में गाँव के हर किसी के मुँह में इसी शुभ-सन्देश का ज़िक्र था। 'ज़रूर आइए, आपका स्वागत है' इस प्रकार का प्यार भरा आमन्त्रण लेकर, सैनिकों के नाम, दादी माँ का ख़त रवाना हो गया।

वह दिन भी आ गया। बच्चों के स्कूल के मैदान में एक काफ़ी बड़ा ओक-वृक्ष था। उस वृक्ष की घनी छाया में स्टेज बनाया गया। सबके बैठने का पूरा इंतज़ाम कर दिया गया। मेहमान तो शाम के चार बजे पहुँचने वाले थे; परन्तु दोपहर के एक बजे से, गाँव के लोगों का स्कूल में इकठ्ठा होना शुरू हो गया। हर कोई यूँ सजधज के आया था कि मानो अपने घर का ही कोई शुभ कार्य हो। दादी माँ भी बहुत भली लग रही थी, शुभ्र सफेद पोशाक में। हाथों में सम्भाली हुई टोकरी से एक-एक पीली रेशमी रिबन निकाल कर, हरेक के हाथ में थमाकर विनती कर रही थीं, 'कृपया,यह पीली रिबन उस ओक-वृक्ष पर बाँध दें।

'कुछ ही क्षणों में, ओक-वृक्ष पर हज़ारों पीली रिबनें लहराने लगीं। सारा इंतज़ाम मनपसंद तथा ठीक-ठाक हो गया है, इस बात की तसल्ली कर लेने के बाद, थकी हुई दादी माँ, थोड़ा सा आराम करने के लिए हरियाली पर बैठ गई। निरभ्र, नीला आसमान, सजा हुआ माहौल, हरियाली से झाँकते हुए रंगबिरंगें, सुकोमल फूल, तन-मन को उत्साहित करने वाले मस्त हवा के झोंके...... सारा माहौल नशीला हो गया था। खिले हुए चेहरे लेकर, मासूम बच्चे दादी माँ के इर्दगिर्द बैठ गए और पूछने लगे,'दादी माँ, बताओ ना, पीली रिबन ही क्यों बाँधनी है?' बच्चों की जिज्ञासा भाँपकर दादी माँ ने सवाल का जवाब कहानी के रूप में दिया,'ठीक से

याद तो नहीं है बच्चों, परन्तु कई साल पहले किसी पाश्चात्य देश के ऐसे ही एक देहात में एक युवा सैनिक को गाँव की एक सुन्दर लड़की से प्यार हो गया। उनका विवाह होने से पहले, युद्ध की घोषणा हुई। युद्ध पर जाने से पहले सैनिक की प्रेमिका ने उसे वचन दिया कि वह उसका इंतज़ार करेगी। सैनिक युद्ध पर चला गया, दुश्मनों के हाथ लग गया और पूरे पच्चीस साल उसे युद्ध-कैदी के रूप में जेल में रहना पड़ा। 25 साल बाद जेल से छूटकर जब वह अपने देश लौटा, तो अपने गाँव लौटने से पहले कई सवाल उसके मन में उभरे। 'क्या मुझे दिए हुए वचन के अनुसार मेरी प्रेमिका अब तक मेरा इंतज़ार कर रही होगी। अपना गाँव छोड़कर अगर कहीं और जगह चली गई होगी तो मैं उसे कहाँ ढूँढूँगा? ये भी हो सकता है कि उसका विवाह किसी और से हो गया हो।' हज़ारों सवाल उसे सताने लगे। अपनी प्रेमिका से मिलने के लिए वह बेचैन हो गया। अपना प्यार, उस पर जो अटूट विश्वास था उस विश्वास की परीक्षा लेने के लिए उसने अपनी प्रेमिका को एक पत्र लिखा। पत्र में बस दो तीन ही पंक्तिया थीं, 'मैं इस दिन, इस समय बस से अपने गाँव पहुँच रहा हूँ। यदि अब भी तुम मेरी हो तो, इस ओक-वृक्ष पर एक पीली रिबन बाँध देना, वह ओक वृक्ष उनके मिलने का संकेत स्थान था। पत्र पोस्ट करने के दो दिन बाद उसने गाँव जाने वाली बस से अपना सफ़र शुरू किया। बस में कॉलेज के लड़के-लड़कियों की भीड़ थी, जो कहीं पिकनिक पर जा रहे थे। उसके पास बैठी हुई एक युवती काफ़ी देर से उसके चेहरे पर उभरते भावों को निहार रही थी। एक क्षण उसके होंठ हँसते थे, दूसरे क्षण आँखों में आँसू भर आते थे। कभी ऐसे महसूस होता था कि वह गहन विचारों में खोया हुआ है। युवती से रहा नहीं गया। आख़िर हिम्मत करके उसने पूछ ही लिया,'बाबूजी, आप क्या सोच रहे हैं ?' उसने संक्षेप में अपनी अनोखी प्रेम-कहानी उसे सुना दी। जो सैनिक पूरे पच्चीस सालों के बाद अपनी प्रेमिका से मिलने आ रहा है, उसकी तरफ़ चन्द क्षण वह युवती देखती ही रह गई। उसकी प्रेम-कहानी, युवती को बेहद रोमांचकारी लगी और कुछ ही मिनटों में बस के हर यात्री के होंठों पर यही कहानी थी। सैनिक की भावनाओं से सारे यात्री तो क्या ड्राइवर भी एकरूप हो गया। सबने तय किया कि बस-स्टैंड जाने से पहले, बस सैनिक के संकेत-स्थान पर, गाँव के बाहर के मैदान पर खड़े ओक वृक्ष के करीब जा कर रुकेगी। गाँव नज़दीक आने लगा। गाँव के बाहर का मैदान दिखाई देने लगा। सैनिक की ज़िन्दगी का अत्युत्कट क्षण करीब आ गया था। बैचनी, उत्सुकता, आतुरता, प्रतीक्षा इस कदर उत्कट हुई थी कि अनजाने में उसकी आँखों से अविरल आँसू बहने लगे और उसकी लम्बी दाढ़ी को भिगोने लगे। कॉलेज के लड़के-लड़कियाँ इतने प्रभावित हुए थे कि हर कोई खिड़की से झाँककर मैदान की दिशा में दिखने लगा था। और तभी ओक-वृक्ष के पास आकर बस रुक गई। गाँव के युवक-युवतियाँ संगीत के साज बजाते हुए, मधुर स्वरों में गीत गा रहे थे। शुभ्र वधू-वेश में, बुढ़ापे की ओर अग्रसर उसकी प्रेमिका उसकी राह में, आँखें बिछाए, बेसब्री से, उसका इंतज़ार कर रही थी। उसने सर पर रखी सफ़ेद हैट में पीली रिबन से बनाया हुआ, रेशमी फूल सजाया था और ओक-वृक्ष पर हज़ारों पीली रिबनें तन्मयता से लहरा रही थीं। प्रतीक्षा का सुखद अन्त हुआ था।'

कहानी ख़त्म हुई और तभी बस का हॉर्न सुनाई दिया। दादी माँ से कहानी सुनकर बच्चे गंभीर ज़रूर हुए थे, परन्तु हॉर्न की आवाज़ सुनते ही मारे ख़ुशी के उठकर दौड़ने लगे। लाठी के सहारे दादी माँ भी उठ खड़ी हुई। एक युद्ध जीतकर आए और एक मानवी सफ़र ख़त्म करके आये दादी के पत्र-मित्र सैनिक बस से उतर गए। स्कूल के बैंड-पथक के लड़के-लड़कियाँ उत्साह से बैंड बजाने लगे। असीम ख़ुशी के साथ नन्हें दोस्त हर सैनिक के हाथ में, गुलाब का फूल थामने लगे।

गाँववालों ने, सैनिकों पर अभिनन्दन और बधाइयों की बौछार की। दादी माँ की आँखों में सैनिकों की हिम्मत के लिए नाज़ भी था और माँ की स्नेह-मयी ममता भी। उसी ममता से हरेक सैनिक से मिलकर स्टेज पर चढ़ गईं दादी माँ और अथक पत्र लिखने वाले उसके हाथों के संकेतों को झेलते हुए छोटे बच्चे सुरीली आवाज़ में गीत गाने लगे, 'हम होंगें कामयाब, हम होंगे कामयाब, एक दिन ..!'

और सुरों की लहरों पर, शान से झूमती हुई हज़ारों पीली रिबनें सुना रही थीं विश्वास की कहानी, दोहरा रहीं थीं आशा का सन्देश!

❐

लघुकथा

सहानुभूति

सीमा स्मृति

'मीरा अस्पताल में है', मिसेज शर्मा ने कहा।

'क्या हुआ मीरा को?' मिसेज बंसल ने पूछा।

'मालूम नहीं ! कुछ तो हुआ है पन्द्रह दिन से एडमिट है।'

'कहाँ एडमिट है ?'

'अपोलो में।'

'अरे वाह, वो तो फाइव स्टार अस्पताल है। फिर क्या, मीरा को क्या फर्क पड़ता है ? सिंगल है। शादी हुई नहीं। उसने कौन से बच्चे पालने है। क्या करेगी इतना पैसा ! कौन सा साथ लेकर जाना हैं। गहने कपड़े तो खरीदती नहीं, उसे कम से कम इलाज तो फाइफ स्टार करवाना चाहिए' मिसेज बंसल ने कहा।

'चल यार, कल ऑफिस से जल्दी निकल उसे देखने अस्पताल में चलते हैं।'

'हाँ बढ़िया आइडिया है। बॉस की फेवरिट स्टाफ है मीरा। उसकी बीमारी की खबर सुनकर मेहता जी काफी द्रवित से लग रहे हैं। हमें अस्पताल जाने की परमिशन के लिए मना नहीं करेगें।'

'सुन हम ज़रा जल्दी निकलने की परमिशन लेंगे। अस्पताल में दस पन्द्रह मिनट बैठकर उसका हाल चाल पता कर, शापिंग करने चलेंगे। कुछ खाएँगे-पिएँगे। बहुत दिन हो गए कलेवा के दही भल्ले और गोल गप्पे खाए हुए।'

'वाह !! गुड आइडिया,मेरे तो मुँह में पानी आ गया। आफिस में शॉर्ट लीव लेने के ऐसे मौके बहुत कम मिलते है।'

❐

पैरासाइट

फ़राह सैयद

एम्स्टर्डम एअरपोर्ट के शेराटन होटल के रिसेप्शन काउंटर पर खड़ी रोज़मेरी ने रिसेप्शनिस्ट से पूछा, 'क्या मेरा कमरा तैयार है? मेरी आज रात की बुकिंग है।' रिसेप्शनिस्ट ने आश्चर्य से रोज़मेरी को देखा और कहा, 'हमारा चेक इन टाइम शाम ४:०० बजे है, मैडम!'

'ओह!' रोज़मेरी की दृष्टि अपनी घड़ी पर गई। अभी तो सुबह के सिर्फ ६:३० बजे थे।

रिसेप्शनिस्ट ने कहा, 'यदि आपको सुबह इतनी जल्दी पहुँचना था तो दो रातों की बुकिंग करानी थी।'

'मैं समझती हूँ, मुझ से ग़लती हो गई।' रोज़मेरी के मुख पर परेशानी और लम्बी यात्रा के बाद उभर आई थकावट के चिह्न साफ़ मौजूद थे।

उसे भाँप कर रिसेप्शनिस्ट बोली 'मैं प्रयत्न करती हूँ कि ९:३० बजे तक आपका कमरा तैयार करा दूँ। जितनी देर में आपका कमरा तैयार हो तब तक आप जाकर रेस्टोरेंट में कॉफ़ी पी लें और कुछ नाश्ता आदि कर लें।' इसके सिवा उसके पास चारा भी क्या था।

वह रेस्टोरेंट में पहुँची तो देखा कि रेस्टोरेंट काफी भरा था। एक ख़ाली सीट पर बैठते ही उसने कॉफ़ी का आर्डर दिया और अख़बार उठा कर पढ़ने लगी। शीघ्र ही बैरा कॉफ़ी लिए प्रस्तुत था। अख़बार पढ़ते-पढ़ते रोज़मेरी कॉफ़ी के घूँट भरने लगी। कॉफ़ी अच्छी थी। उसने अख़बार एक तरफ रख दिया ताकि कॉफ़ी का भरपूर आनंद उठा सके। अख़बार हटाते ही उसकी दृष्टि सामने की कुर्सी पर जाने कब आकर बैठ गए व्यक्ति पर गई।

उसके मुँह से अचानक निकला, 'केविन तुम!'

वह व्यक्ति भी आश्चर्यचकित होकर बोला, 'रोज़मेरी तुम!'

इतने वर्ष पश्चात् भी दोनों ने एक दूसरे को पहचान लिया था। कॉफ़ी पीते- पीते रोज़मेरी के मुख का स्वाद कसैला हो गया। उसने चारों ओर नज़र घुमाकर देखा कि अपनी सीट बदल ले किन्तु छोटे से रेस्टोरेंट में कोई और सीट खाली नहीं थी। उसने अख़बार फिर उठा लिया।

'रोज़मेरी, सुनो', यह केविन का स्वर था। 'कृपया मेरी बात सुनो।' उसने अख़बार नीचे रख दिया।

'तुम यहाँ कैसे?'

'वर्ल्ड विज़न का एक मिशन पूरा करके अफ्रीका से लौट रही हूँ। एक दिन के लिए एम्स्टर्डम में यात्रा भंग की है।' उसने संक्षिप्त सा उत्तर दिया।

'मेरे विषय में नहीं पूछोगी कि मैं कहाँ हूँ? कैसा हूँ?' रोज़मेरी चुप रही।

'बोलो, कुछ तो बोलो।'

'क्या मुझ से अब भी घृणा करती हो?' रोज़मेरी अब भी चुप। सोच रही थी कि मैं तुमसे घृणा कैसे कर सकती हूँ, केविन? तुम तो मेरे टीन ऐज स्वीट हार्ट थे। वैसे भी जीवन के इस मोड़ पर घृणा जैसे भाव मेरे लिए कोई अर्थ नहीं रखते। मैं किसी से घृणा नहीं करती। मैंने तुम से कभी घृणा नहीं की, केविन। केवल तुम्हारे आचरण से घृणा की है। घृणित व्यक्ति नहीं उसके कृत्य होते हैं।

रोज़मेरी की केविन से प्रथम भेंट यूनिवर्सिटी के कैफ़े में इसी तरह अचानक हुई थी। एक दोपहर १९ वर्षीय रोज़मेरी पुस्तक में नज़रें गड़ाए कॉफ़ी की चुस्कियाँ भर रही थी कि संगीत का मादक स्वर उसके कानों से टकराया। उसने नज़र उठा कर देखा कि कोई मेज़ पर बैठा गिटार के तारों से छेड़

फ़राह सैयद

हिन्दू कॉलेज, दिल्ली यूनिवर्सिटी से स्नातकोत्तर करने के पश्चात क़रीब दो दशक से सियाटल वॉशिंग्टन में निवासित हैं। यूनिवर्सिटी ऑफ वॉशिंग्टन से डिग्री प्राप्त की और आज कल बोयिंग कंपनी में कार्यरत हैं। साहित्य में बचपन से बहुत रुचि रही किन्तु अमरीकी जीवन की भागदौड़ में साहित्य का साथ 15 वर्ष तक छूटा रहा। क़लम पर समय की गर्द की पर्त पर पर्त जमती गई। जैसे जीना ही भूल गईं लेखन साँस लेने का माध्यम है और आपकी कहानियों के किरदारों में अपने अंदर की औरत को खोजने का प्रयास। यह मातृभूमि और अन्य साहित्य प्रेमियों से जुड़ने का मार्ग भी है। कहानियाँ और हास्य-व्यंग्य लिखना आपके प्रिय शौक़ हैं; किन्तु यदि मन हो तो कभी कविताएँ भी लिख लेतीं हैं। इसी शौक़ को बढ़ाने और साहित्य प्रेमियों का साथ पाने की लालसा हेतु; आप समय- समय पर सियाटल क्षेत्र में साहित्यिक गोष्ठियाँ भी करती हैं।

ईमेल:
syed_farah@hotmail.com

छाड़ कर रहा था। देखा तो बस देखती रह गयी। कन्धों तक झूल रहे केश, उन्नत ललाट और सुगठित शरीर का स्वामी, केविन बिलकुल यीशु मसीह की सी छवि लिए था। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे यीशु मसीह उसके सम्मुख बैठे गिटार बजा रहे हों। कानों से होता हुआ, दिल में उतरता, आत्मा को सराबोर करता वह संगीत उसके शरीर के समस्त तारों को झंकृत कर गया। सम्मोहित रोज़मेरी एकटक गिटार बजाते केविन को देख रही थी कि अचानक केविन की दृष्टि उस से आ टकराई। उसे लगा जैसे चोरी करते पकड़ी गई। उसने झटपट कॉफ़ी ख़त्म की, किताब उठाई और कैफ़े से बाहर निकल गयी।

उसकी केविन से दूसरी भेंट पुस्तकालय की सीढ़ियों पर हुई थी। सीढ़ियाँ उतरती रोज़मेरी की दृष्टि सीढ़ियाँ चढ़ते केविन से फिर आ मिली थी।

उसने धीरे से बोला, ''हाई!''

उधर से स्वर उभरा, ''हेलो!''

''हाउ आर यू?''

गुड!

''योरसेल्फ?''

गुड!

''यू प्ले रियली वेल!'' केविन मुस्कुराया, 'आई ऍम इन स्कूल ऑफ़ म्यूज़िक वंडरफुल!''

''योरसेल्फ?''

''आई ऍम इन स्कूल ऑफ़ एरोनॉटिक्स।''

''ओह! ग्रेट!''

इसी प्रकार उसका और केविन की मुलाक़ातों का सिलसिला जो आरम्भ हुआ तो कब तक चला उसे ठीक से स्मरण नहीं। शांत, सौम्य और मेधावी रोज़मेरी की जीवन सरिता में तरंगे उठने लगतीं जब केविन अपने मादक संगीत के स्वर छेड़ देता। रोज़मेरी के बड़े बड़े सपने थे। उसका डिज़ाइन इंजीनियर होने का सपना, उच्च पद का सपना, सागर तट पर सुंदर से घर का सपना और उस घर में गिटार बजाता केविन। वह रात में सपने देखती और दिन में उन सपनों को पूरा करने के लिए जी तोड़ परिश्रम। केविन में अल्ल्हड़ता थी, रोज़मेरी में ठहराव। वह केविन के मस्त स्वाभाव पर मुग्ध थी। जब-जब वह उस से मिलती उसे अपनी थकावट मिटती हुई लगती। वह उसके दौड़ते हुए जीवन का गति अवरोधक था। केविन उसके गाम्भीर्य,बुद्धिमत्ता और कार्यकुशलता से प्रभावित था। उसे लगता रोज़मेरी उसके जीवन की दिशा है; जो उसे गंतव्य तक पहुँचा देगी। रोज़मेरी की उच्च आकांक्षाएँ उसके जीवन को गतिमान करतीं।

दोनों के व्यक्तित्व के इस विरोधाभास में चुम्बकीय आकर्षण था। दोनों एक दिन न मिलते तो लगता जीवन रसविहीन है। एक संध्या दोनों सागर तट पर मिले थे। सूर्य अस्त हो रहा था। केविन आँखें मूँदे गिटार बजा रहा था। रोज़मेरी अस्त होते सूर्य के मनमोहक दृश्य को आत्मसात करने में खोई थी। अचानक केविन ने आँखें खोलीं और उसकी दृष्टि सूर्य की लालिमा से आभामय होते रोज़मेरी के सुंदर मुखड़े पर आ टिकी। उसके हाथ गिटार बजाते- बजाते वहीं रुक गए। उसके सुंदर मुखड़े को अपने हाथों में ले उसके नयनों में झाँकता केविन भावुक हो उठा।

'रोज़, तुम कितनी सुंदर हो, सुगंधा हो तुम। सच ही तुम्हारे माता-पिता ने तुम्हारा नाम रोज़मेरी रखा। तुम ने मेरे जीवन को सुगंध से भर दिया। तुम प्रेरणा हो मेरी, कल्पना हो, कामना हो! तुम्हीं से जीवन है! तुम्हीं से संगीत! तुम मेरे संगीत की आत्मा हो।'

'केविन, यह तुम्हें क्या हो गया है? छोड़ो मुझे।'

'नहीं रोज़, मैं तुम्हें कभी खोना नहीं चाहता। तुम मेरे जीवन में स्थायी रूप से आ जाओ। बोलो, हम विवाह कब करेंगे?'

'केविन, तुम अत्यधिक भावुक हो रहे हो। मैं कहाँ भागी जा रही हूँ? अभी तो हमें अपना- अपना करियर बनाना है। पारिवारिक कर्त्तव्यों का बोझ उठाने लायक़ तो बन जाएँ तभी तो विवाह करेंगे। यदि इस से पहले हम ने ऐसा किया तो हमें सदा पश्चात्ताप की अग्नि में जलना पड़ेगा कि हम ने अपने सपने अधूरे छोड़ दिए। तब हम अपना यही रिश्ता सड़ता हुआ लगेगा और एक दूसरे से दुर्गन्ध आने लगेगी।'

'रोज़, तुम ठीक कहती हो। तुम्हारी इसी समझ और व्यावहारिकता का तो मैं प्रशंसक हूँ। तुम सत्य ही संतुलन रखना जानती हो। जब तुम चाहोगी विवाह तभी होगा।'

केविन की संगीत साधना ज़ोरों पर थी और रोज़मेरी का अपने करियर के प्रति जुनून। देखते ही देखते चार वर्ष व्यतीत हो गए। रोज़मेरी ने इंजीनियरिंग की परीक्षा उच्च अंकों से उत्तीर्ण की और स्नातक होते-होते उसका अपॉइंटमेंट एक जानी मानी एयरोस्पेस कंपनी में हो गया। केविन को अभी उस सफलता की प्रतीक्षा थी; जिसकी उसने कामना की थी।

रोज़मेरी उसे समझाती, 'तुम चिंता क्यों करते हो? तुम अपनी साधना जारी रखो। तुम्हें सफलता अवश्य मिलेगी। फिर मैं जो हूँ। तुम्हें किस बात की चिंता?'

'अच्छा तो फिर विवाह कर लेते हैं।'

'विवाह? आइडिया बुरा नहीं है।'

'सच? अच्छा तो कब बँध रहे हैं हम प्रणय सूत्र में?'

'जैसे ही मुझे काम से छुट्टी मिले।'

केविन आँखें मूँदे फिर सपनों की दुनिया में खो गया।

'क्या हम हवाई में शादी कर सकते हैं? केवल मैं और तुम। बीच पर। कितना मज़ा आयेगा।' केविन आह्लादित होते हुए बोला 'शादी की शादी और हनीमून का हनीमून।'

'क्या बात है? तुम्हारे दिमाग़ और तुम्हारे आइडिया की। मैं तो मान गई। इसे कहते हैं एक तीर से दो शिकार। लेकिन इन सबका खर्च कौन उठायेगा?'

'तुम माय लव, तुम!' उसकी आँखों में झाँकता, केविन बोला।

'सोचना पड़ेगा।'

'डिअर, तुम सोचती बहुत हो। इसी सोच विचार में जीवन बीत जायेगा। कभी-कभी तुम ज़्यादा ही व्यावहारिक हो जाती हो। तुम अपने इस दिमाग़ पर ज़्यादा बोझ मत डालो। जब मुझे अच्छा सा ब्रेक मिलेगा तो सच कहता हूँ तुम्हें एक-एक पैसा लौटा दूँगा। तुम्हें दूसरे हनीमून पर ले जाऊँगा। इस से भी अच्छा।'

'अच्छा भई तुम जीते मैं हारी।' रोज़मेरी विवाह के खर्च के लिए राज़ी हो गयी।

शीघ्र ही दोनों प्रणय सूत्र में बँध गए। रोज़मेरी का दिन दफ्तर के काम में गुज़रता और संध्या केविन और संगीत के संग। जीवन निर्बाध गति से बह रहा था और अति सुंदर था। उसमें प्रेम की ऊष्मा थी और संगीत की मादकता।

एक शाम दफ्तर से थकी सी लौटी रोज़मेरी ने आते ही आवाज़ लगाई- 'केविन कहाँ हो डार्लिंग? ज़ोरों से भूख लगी है। डिनर के लिए बाहर चलोगे? अरे कहाँ हो भई? दिखाई ही नहीं दे रहे।'

रोज़मेरी उसे पूरे घर में ढूँढ़ आई। बैकयार्ड का

द्वार खोल जैसे ही बाहर निकली..

'सरप्राइज़! रात का खाना तैयार है।'

'ओह माय गौश! बार-बे-क्यू! मज़ा आ गया। यह सब कब किया तुमने?'

'तुम्हारे आने से ज़रा पहले।'

'यह कैंडल भी? मेरी मनभावन सुगंध। यू आर ग्रेट, केविन!'

'अच्छा, क्या पिओगी?'

'सम रेड वाइन प्लीज़।'

'उसका भी प्रबंध है। देअर यू गो मैम!' गॉब्लेट में वाइन उँडेलता केविन बड़े ही नाटकीय अंदाज़ में बोला।

'वाओ, यू आर वंडरफुल केविन!' वाइन के घूँट भरती रोज़मेरी मुग्ध भाव से उसे निहार रही थी।

'तुम कितने अच्छे हो। कैसे मेरे मन की हर बात जान लेते हो? आई ओ यू ऐ डिनर! मैं वादा करती हूँ कि शुक्रवार की शाम को जल्दी आऊँगी और तुम्हारा मनपसंद खाना पकाऊँगी।'

'खाना छोड़ो यह बताओ मुझे ख़रीदारी कराने कब ले चलोगी? मुझे कुछ अच्छे कपड़े ख़रीदने हैं और जूते भी। इंटरव्यू देने जाऊँगा तो क्या पहनूँगा?'

'अरे बस इतनी सी बात! अगले शनिवार को ले चलूँगी। तुम्हें जो चाहिए ख़रीद लेना।'

'सुनो, मेरी कार भी बहुत पुरानी हो गई है। नई कार ख़रीदना चाहता हूँ। म्यूज़िक कंपनियों में जाऊँगा, बड़े लोंगों से मिलूँगा तो इस फटीचर कार में जाता कैसा लगूँगा? प्रथम प्रभाव बड़ा ख़राब पड़ेगा।'

'हूँ! इसके लिए सोचना पड़ेगा, केविन। अभी ख़र्च बहुत है। हम दोनों की पढ़ाई के लोन की क़िस्त भी तो देनी होती है। प्रमोशन की कोशिश कर रही हूँ। बस मिल जाए तो दिला दूँगी। इस समय एक और क़िस्त मुझ पर भारी पड़ेगी।'

'अरे तुम जैसी मेधावी नारी को पैसों की क्या चिंता? ओवरटाइम कर लो। पैसे ही पैसे। तुम एक क्या दो कारों की क़िस्त दे सकती हो।'

'केविन, तुम भी बहुत दूर की सोच लेते हो।' रोज़मेरी मुस्करा दी।

'अच्छा तुम यहाँ आओ। मेरे सामने आकर बैठो। मैं तुम्हें अपनी नई धुन सुनाता हूँ।'

इसी तरह डेड़ वर्ष व्यतीत हो गया। रोज़मेरी अपने अथक परिश्रम से लीड इंजीनियर बन गई।

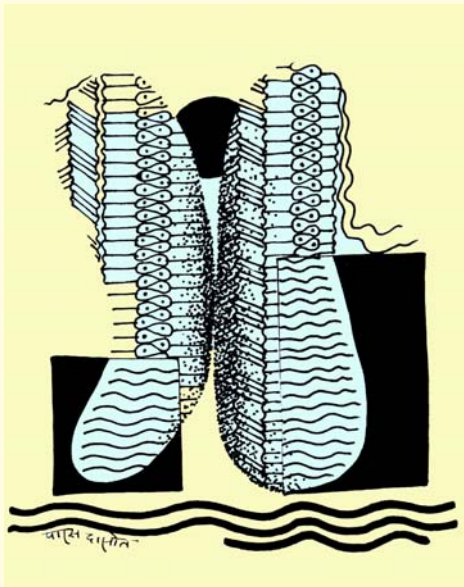

उसकी व्यस्तता दिन पर दिन बढ़ रही थी। उसे अभी और आगे बढ़ना था और अपने सपनों को पूरा करना था। एक शाम फिर थकी सी लौटी रोज़मेरी ने केविन से पूछा....

'आज दिन भर तुम ने क्या किया?'

'तेरा नाम लिया, तुझे याद किया।'

उसके इस कथन से झुँझला उठी रोज़मेरी।

'छोड़ो यह मज़ाक। बताओ दिन भर क्या करते रहते हो?'

'अपनी धुनें कंपोज़ करता हूँ और क्या?'

'अब यह कब तक करोगे? वर्ष से ऊपर हो गया और वही ढाक के तीन पात। अभी तक कोई परिणाम नही?'

'प्रयास तो कर रहा हूँ न। म्यूज़िक कंपनियों को भेज भी रहा हूँ। जाने कब ब्रेक मिल जाये।'

'ऐसे बैठे रहने से कुछ नहीं होगा।' रोज़मेरी की खीज बढ़ रही थी। 'तुम कुछ और काम क्यों नहीं करते? साइड में इसकी भी कोशिश करते रहना। आख़िर पुरुष हो, तुम्हें भी तो जीवन की गाड़ी खींचने में अपना सहयोग देना चाहिए। इसे खींचते-खींचते मेरे कंधे दुखने लगे हैं।'

'तुम क्यों मेरे पीछे पड़ी हो? कहा न कर तो रहा हूँ कोशिश। तुम यह अपना फलसफा अपने पास रखो।' केविन का स्वर ऊँचा हो गया। 'तुम अपने आप को समझती क्या हो? छोटी सी नौकरी कर के समझ रही हो कि बड़ा तीर मार लिया। समझती हो चाँद पर तुम्ही पहुँचने वाली हो। हज़ारों इंजीनियर घूम रहे हैं दुनिया में तुम जैसे। मैं कोई छोटा मोटा काम नहीं करूँगा। जब मुझे ब्रेक मिलेगा तो देखना आकाश को छुएगा मेरा नाम।'

रोज़मेरी का मन आहत हुआ। स्वाभिमान को झटका लगा। अश्रुपूरित नेत्रों से आकाश को ताका जैसे पूछ रही हो मेरे संयम और निष्ठा का यह परिणाम? दोनों में शीत युद्ध आरम्भ हो गया। पूरा सप्ताह गुज़र गया। दोनों की बातचीत बंद थी।

आखिर केविन ने मौन तोड़ा-'मुझे क्षमा कर दो रोज़मेरी, मैं अपना संयम खो बैठा था। मुझे तुम पर इतना नाराज़ नहीं होना चाहिए था। आई लव यू, रोज़मेरी! मैं तुम्हें खोना नहीं चाहता।'

'आई ऍम सॉरी, केविन! मैं भी अपना धीरज खो बैठी थी। मैं प्रयास करूँगी की जीवन से ताल मेल बिठा सकूँ। तुम्हारे कठिन समय में तुम्हारा साथ दूँ और तुम्हारा सहारा बनूँ।'

जीवन फिर अपनी गति से दौड़ने लगा। रोज़मेरी अपने परिश्रम से उन्नति की सीढ़ियाँ चढ़ती जा रही थी। अब वह इंजीनियरिंग मैनेजर बन गई थी। इधर कुछ दिन से केविन अक्सर चर्च जाने लगा था और काफी प्रसन्नचित्त रहने लगा था। एक दिन उसने स्वयं ही रोज़मेरी को बताया कि चर्च के क्वायर में बजाने लगा है। सर्विसेज़ में भाग ले कर उसे आत्मसंतोष मिलता है और मन हर्षोल्लास से भर जाता है।

'ओह गुड! चलो तुम्हें कोई मिशन मिला। इसे जारी रखो। तुम खुश हो इसलिए मैं भी बुहत खुश हूँ।'

अब केविन का अधिकतर समय चर्च और उसके कार्यों में व्यतीत होने लगा। उसकी शामें अधिकतर व्यस्त हो जातीं। रोज़मेरी अकेली हो जाती किन्तु वह प्रसन्न थी कि केविन व्यस्त है। इसी बीच उसे विदेशी असाइनमेंट का ऑफर मिला। उसने आह्लादित होते हुए केविन को बताया कि उसे छह सप्ताह का इटली में असाइनमेंट मिला है; जिसे उसने स्वीकार भी कर लिया है। केविन को उसमें कोई आपत्ति न थी। रोज़मेरी इटली चली गई। दिन भर वह अपने काम में व्यस्त रहती पर शाम को केविन को फ़ोन करना न भूलती। कुछ दिन से वह अनुभव कर रही थी कि केविन कुछ उखड़ा-उखड़ा सा रहने लगा है। जब वह फ़ोन करती है या तो वह सो रहा होता है या फिर घर से बाहर होता है। रोज़मेरी कुछ परेशान सी हो जाती। इधर उसका असाइनमेंट भी कुछ लम्बा हो गया था। किसी प्रकार दस हफ्ते समाप्त हुए और उसके

वापिस जाने का समय हो गया। उसने घर केविन को फ़ोन लगाया।

'केविन, मैं इतवार को वापिस आ रही हूँ। तुम मुझे एअरपोर्ट लेने आना'।

'क्या करती हो? सोते से जगा दिया। अभी-अभी तो गहरी नींद लगी थी। क्या चाहिए?'

'मैं कह रही थी कि तुम मुझे एअरपोर्ट लेने आओगे?'

'नहीं मैं नहीं आ पाऊँगा। तुम टैक्सी से आ जाना। चर्च में विदेशी वक्ता आया है। मैं सभा के आयोजन में भाग ले रहा हूँ इसलिए मेरा वहाँ रहना आवश्यक है।'

केविन के इस कथन से रोज़मेरी का मन आहत हुआ। उसने स्वयं को समझाया, केविन व्यस्त है और यही उसके लिए अच्छा है।

घर लौटने के बाद भी पूरे सप्ताह रोज़मेरी की भेंट केविन से भली भाँति न हो सकी। उसका दिन व्यस्त तो केविन की शाम। मिलें तो कैसे? वह उसको इटली के संस्मरण सुनाने को व्याकुल थी परन्तु सप्ताहांत से पहले ऐसा होता दिखाई नहीं दे रहा था। शनिवार की सुबह रोज़मेरी जल्दी उठी। उसने केविन का मनपसंद नाश्ता तैयार किया फिर उसने प्यार से केविन को उठाया।

'उठो माय लव, मैंने तुम्हारा मनपसंद नाश्ता बनाया है।'

उनींदी आँखों से केविन ने रोज़मेरी को देखा, शिकायती स्वर में बोला-'इतनी सुबह सुबह जगा दिया।'

'अरे सुबह सुबह कहाँ है? ९:०० बज रहे हैं। उठो जल्दी उठो। मुझे तुम से बहुत सारी बातें करनी हैं और विशेष सूचना भी देनी है।' मनुहार करती रोज़मेरी बोली।

'कौन सी विशेष सूचना?'

'तुम गेस करो?'

'तुम्हें बड़ा प्रमोशन मिला?'

'ग़लत।'

'एक और बड़ा विदेशी असाइनमेंट?'

'नहीं फिर ग़लत।'

'अच्छा फिर तुम ही बोलो।'

'केविन, तुम डैड बनने वाले हो।'

'क्या? डैड?'

'हाँ डैड। क्या तुम्हें ख़ुशी नहीं हुई?'

'ख़ुशी, हाँ, हुई।' हकलाता सा केविन बोला।

'अभी इतनी जल्दी भी क्या थी? अभी तो बच्चे के खर्च का बहुत बोझ पड़ेगा और ज़िम्मेदारी भी।'

'तुम यह सब क्यों सोच रहे हो? जैसे सब ख़र्च पूरे होते हैं यह भी होगा और फिर ज़िम्मेदारी हम दोनों मिल कर उठाएँगे।'

केविन चुप हो गया और बात आई गई हो गई।

केविन की चर्च गतिविधियाँ दिन पर दिन बढ़ रहीं थीं। काम और शरीर का बढ़ता बोझ रोज़मेरी अकेली झेल रही थी। केविन की अपने और घर की तरफ बढ़ती उदासीनता को वह अनुभव कर रही थी। उसके प्रसव का समय निकट आ रहा था। वह बड़े चाव से बच्चे का सामान ख़रीदती उसकी नर्सरी सजाने की तैयारी कर रही थी। उसका यह बढ़ता शौक़ देख कर केविन एक दिन एक दम से फट पड़ा था..

'यह क्या फ़ालतू सामान उठा लाती हो तुम? क्यों अनाप शनाप ख़र्च किये जा रही हो? क्या आवश्यकता है इतने छोटे बच्चे पर इतना ख़र्च करने की? देखती और सुनती नहीं कि दुनिया में कितने बच्चे भूखों मर रहे हैं। तुम से यह नहीं होता कि उनके लिए कुछ दान करो।' केविन अपनी रौ में न जाने क्या क्या बोले जा रहा था। रोज़मेरी हक्की-बक्की उसका मुँह देख रही थी। जब वह बोल चुका तो वह बोली 'हमारा प्रथम कर्त्तव्य हमारा अपना बच्चा है।'

केविन उसे आगे से कुछ न कह सका। अगले माह जब रोज़मेरी ने क्रेडिट कार्ड की स्टेटमेंट देखी तो सर पीट लिया। केविन ने जॉइंट खाते से हज़ारों डॉलर चर्च को दान कर दिए थे। यह उसके लिए असहनीय था कि केविन का ख़र्च वह उठाये और केविन उसकी मेहनत से कमाए पैसे यूँ चर्च को दान कर आये। दोनों में घमासान युद्ध हुआ पर ढीठाई पर उतरा केविन अपनी ग़लती मानने को तैयार न हुआ।

समय आने पर रिचर्ड का जन्म हुआ। उसके जन्म से केविन खुश था और घर पर समय बिताने लगा था। रोज़मेरी को लग रहा था कि अब सब ठीक हो जाएगा। रिचर्ड को पालने में वह उसको सहयोग भी दे रहा था। रोज़मेरी ने आठ सप्ताह का अवकाश लिया था जो समाप्त होने वाला था। उसने प्रस्ताव रखा कि केविन घर पर रह कर रिचर्ड की देखभाल करे तो उसकी साज सँभाल भी अच्छी होगी और डे केअर का ख़र्च भी बचेगा।

'क्या? मैं घर पर रह कर रिचर्ड की देखभाल करूँ? मुझे बहुत से और काम करने हैं। तुम नैनी क्यों नहीं रख लेतीं? मैं चर्च के विदेशी मिशन ट्रिप पर जा रहा हूँ।'

'क्या कहा तुमने? बच्चा छोड़ कर विदेशी ट्रिप पर जा रहे हो। अक़्ल तो ठिकाने है तुम्हारी? विदेशी यात्रा का खर्च भी बहुत होगा। इतने पैसे कहाँ से आयेंगे?'

'इतना कमाती हो और हर वक़्त पैसे का रोना लेकर बैठ जाती हो। इतनी कृपण हो कि ईश्वर के नाम पर तुम्हारे पास से पैसे नहीं निकलते। काम पर वापस जा रही हो तो ओवरटाइम कर लो। पैसे और आ जाएँगे।'

'तुम्हारा दिमाग़ तो ठीक है। नन्हे बच्चे को छोड़ कर मैं ओवरटाइम कर लूँ? तुम कैसे पिता हो? दया नाम की कोई चीज़ है तुम्हारे मन में? अपने बच्चे से ज़्यादा तुम्हें सारे जग की चिंता है।'

'तुम कुछ भी कहो मैं अपना विचार नहीं बदलने वाला। मैंने जाने का निश्चय कर लिया है। सीधी तरह से पैसे दे दो, नहीं तो मैं क्रेडिट कार्ड से ले लूँगा।'

रोज़मेरी के लाख मना करने के बावजूद केविन मिशन ट्रिप पर चला गया। जब एक महीने के बाद लौटा तो उसके रंग- ढंग ही बदले हुए थे। उसे घर की हर वस्तु विलासिता लगती। यह क्यों ख़रीदा? इसकी आवश्यकता क्या है जैसे सवालों से रोज़मेरी को परेशान करता। रिचर्ड में भी उसकी रुचि वैसी नहीं रह गयी थी।

अभी रोज़मेरी सोच ही रही थी कि इस मुसीबत से कैसे निबटा जाए तो क्या देखती है कि केविन ने तलाक़ के कागज़ उसके सामने रख दिए।

'यह क्या है?'

'तलाक़ के कागज़!'

'यह क्या मज़ाक़ है?'

'मैं मुक्ति चाहता हूँ तुम से, रिचर्ड से और सांसारिकता से। मैं ईश्वर को प्राप्त करना चाहता हूँ। तुम मेरे भक्ति मार्ग में अवरोधक हो रोज़मेरी, इसलिए मैं तुम्हारा त्याग कर रहा हूँ। मेरा रास्ता मत रोको। इन कागज़ों पर हस्ताक्षर करो और मुझे मुक्त करो।'

'तुम इसे मुक्ति कहते हो केविन? यह मुक्ति नहीं पलायन है। घर छोड़ देने से तुम्हें ईश्वर नहीं मिलेगा। तुम यह याद रखो कि मुझ से तुम्हें तलाक़ भी नहीं मिलेगा।'

'तुम सीधी तरह से तलाक़ देती हो, नहीं तो मैं अदालत से ले लूँगा।'

'तुम्हारे जो मन में आये करो पर मैं तुम्हें तलाक़ नहीं दूँगी।'

रोज़मेरी के तर्क वितर्क, मान मनुहार और झगड़ा सब व्यर्थ। केविन नहीं माना और अदालती लड़ाइयों के बीच दोनों का तलाक़ आख़िर हो ही गया। संसार को बंधन मानने वाले केविन ने रोज़मेरी की पूँजी में अपना हिस्सा लेने में कोई कमी न दर्शायी। केविन चला गया और रोज़मेरी रिचर्ड के साथ ख़ाली हाथ उसे जाते हुए देखती रह गई। आज वही केविन एम्स्टर्डम में उसके सामने था।

रोज़मेरी की तन्द्रा टूटी तो १०:०० बज रहे थे। वह शीघ्रता से उठी और रिसेप्शन काउंटर की ओर लपकी कि शायद उसका कमरा तैयार हो गया हो। उसने आशा से रिसेप्शनिस्ट की ओर देखा पर उसने अफ़सोस में सर हिला कर उससे कहा 'हमें खेद है हम आपको २:३० बजे से पहले कमरा नहीं दे सकते।'

'यह क्या मुसीबत है? थकान से मेरा बुरा हाल है। रहने दो मैं कोई और होटल देख लूँगी।' रोज़मेरी निराशा से बोली।

वह पलटी तो देखा केविन उसके पीछे खड़ा था।

'रोज़, मैंने पहले भी तुम से बहुत कुछ लिया है। क्या मैं तुमसे तुम्हारे साथ का एक दिन माँग सकता हूँ? वैसे भी बिना बुकिंग के तुम्हें कोई होटल नहीं मिलेगा। यहाँ बैठी- बैठी क्या करोगी? चलो चल कर शहर घूमते हैं।'

रोज़मेरी का दिल चाहा की पहले ज़ोर से चीख़े और कहे कि तुमसे बड़ा बेशर्म मैंने पहले कभी नहीं देखा। फिर उसने सोचा देना उसका स्वाभाव है। वह किसी को कुछ दे कर सुख पाती है। कैसे दीन स्वर में माँग रहा है। सबकी तरह यदि उसे भी

अपनी झोली से कुछ दे देगी तो क्या फ़र्क पड़ जाएगा? यही सोच कर उसने हाँ कर दी। केविन के स्वर में हर्ष के भाव तैर गए।

'तुम सचमुच चल रही हो?'

'हाँ'।

'चलो फिर टैक्सी लेकर सारा शहर घूमेंगे। कैनाल का बोट टूर लेंगे, कैथेड्रल और भी न जाने क्या- क्या ?' केविन बच्चों की भाँति उल्लसित होता हुआ बोला।

रोज़मेरी को लगा यह अभी भी वैसा ही है। कई लोग मरते- मरते परिपक्व नहीं होते।

दोनों टैक्सी लेकर ३०-४० मिनट में डाउनटाउन पहुँच गए।

'उतरो रोज़, टैक्सी का भाड़ा चुका दो', केविन वही पुराने अंदाज़ में बोला। पहले क्या देखना चाहोगी? कैनाल का बोट टूर लोगी?

कैनाल पर गहरी दृष्टि डालती रोज़मेरी बोली

'मैं तो पैदल चल कर डाउनटाउन घूमना पसंद करूँगी।'

'तो फिर चलो।'

केविन ने सहमति दी। पैदल चलते-चलते रोज़मेरी की दृष्टि एक दुकान के शोकेस में लगे मैरिऔना के चॉकलेट पर गई।

'यहाँ लगता है यह खुलेआम बिकता है?'

'चलो भीतर चल के पूछें कि क्या यह असली है?'

'चलो पूछते हैं।'

केविन ने दुकानदार से पूछा क्या यह चॉकलेट असली है? दूकानदार कुछ चिढ़ कर बोला-'हाँ भाई असली है। यहाँ नक़ली कुछ नहीं मिलता।'

'माफ़ करना हम अमेरिका से आये हैं, वहाँ मैरिऔना यूँ खुलेआम नहीं मिलता इसलिए पूछ लिया। अच्छा यह बताओ यहाँ आस- पास घूमने के लिए कौन- कौन सी जगह है?'

दुकानदार बोला 'सब से मशहूर तो यहाँ रेड लाइट डिस्ट्रिक्ट ही है।'

'अच्छा, वह कितनी दूर होगी?'

'यही कोई दो ब्लॉक पर।'

'फिर तो पैदल चल कर वहाँ पहुँचा जा सकता है। चलो रोज़ पहले वहीं चलते हैं।'

चलते-चलते दोनों एम्स्टर्डम के पर्यटकों के सबसे बड़े आकर्षण के निकट पहुँच गए। रेड लाइट डिस्ट्रिक्ट में पैर रखते ही रोज़मेरी को अजीब सा धक्का लगा। उसने किसी तरह अपने को सँभाला और ग़ौर से वहाँ के दृश्य को देखने लगी। ८X८ फ़ीट के कमरों की खिड़कियों के शोकेस में बिकने के लिए खड़ी नारी। बिलकुल किसी टैग लगी सजावटी वस्तु की भाँति। एक तरफ़ सिगरेट मुँह में दबाए स्विमसूट पहने इस नारी को कोई दूर से देखे तो मिट्टी का पुतला समझने की भूल कर बैठे। दूसरी तरफ़ स्थूलकाय, अजीबोग़रीब श्रृंगार किये, आते-जाते लोगों पर फब्तियाँ कसती यह नारी। कैसा वीभत्स दृश्य था? रोज़मेरी विचार करती जा रही थी यह कैसी विडंबना है? किसने इन्हें परकटी चिड़ियों की भांति इन पिंजरों में बंद किया? इनके शौक़ ने, मजबूरी ने या पुरुष ने? कारण कुछ भी हो पर यह ठीक नहीं है।

उसे मतली आने लगी फिर भी वह आगे बढ़- बढ़ एक- एक कमरे में झाँक-झाँक कर देख रही थी। एक कमरे के आगे उसके पैर ठिटक कर रुक गए। यह क्या? इतनी सुंदर स्त्री के शरीर पर मार के निशान, घावों से रिसता सा लहू। रोज़मेरी अवाक् उसे देख रही थी। किसने किया होगा इसका ऐसा हाल? क्या ईश्वर की कोमल रचना का ऐसा हाल करते उसे तनिक भी दया न आई होगी, उसका भय न सताया होगा? उसे विचारमग्न देख कर केविन बोला 'क्या सोच रही हो ?'

'सोच रही हूँ नारी के स्थान पर यहाँ पुरुष होता तो कैसा होता? चोट खाया, पिटा- कुटा सा पिंजरे में बंद या शोकेस में खड़ा लेबल लगी वस्तु की तरह बिकने को तैयार। आओ मैं बिकाऊ हूँ! मेरे

दाम लगाओ और मुझे ख़रीद लो।'

'फिर पता है मैं क्या करती?'

'क्या करतीं?'

'उसके दाम लगा कर उसे ख़रीद लेती।'

'फिर?'

'फिर उसे पिंजरा खोल कर मुक्त कर देती। जैसे पिंजरे का पंछी।'

'क्या?' केविन विस्मय से उसे ताक रहा था।

'यही अंतर है स्त्री और पुरुष में। स्त्री पुरुष की जननी है इसलिए उस पर अत्याचार नहीं कर सकती। विस्मय से क्यों देख रहे हो? पहले भी तो एक को मुक्त कर चुकी हूँ।'

'चलो यहाँ से, मैं अब और यहाँ नहीं ठहर सकता और ना ही यह सब देख सकता हूँ। चलो कैथेड्रल में चलें।'

'ठीक है चलो।'

दोनों थोड़ी दूर चल कर कैथेड्रल में प्रवेश कर गए। केविन यीशु मसीह के सम्मुख खड़ा आँखें मूँदे धीमे स्वर में कुछ माँग रहा था। काफी देर वह ऐसे ही खड़ा रहा। केविन आँखें खोलो, चलो बाहर चलें। उसने विस्मय से रोज़मेरी को देखा।

'क्यों तुम्हें कुछ नहीं माँगना।'

'नहीं।' 'क्यों?'

'क्योंकि मुझे ईश्वर से कुछ पाने के लिए कैथेड्रल में आने की आवश्यकता नहीं है। मैं उसे सृष्टि के कण-कण में महसूस करती हूँ और कहीं भी उस से कुछ माँग सकती हूँ। चलो कैथेड्रल के अहाते में बेंच पर बैठते हैं। हाँ तो मैं कह रही थी, संसार ईश्वर का बनाया हुआ रंगमंच है और हम उसके पात्र। जो किरदार हमारे लिए उसने तय किये हैं यदि हम उसे निष्ठापूर्वक निभाते हैं तभी ईश्वर को प्राप्त करते हैं। अपने कर्तव्यों के पलायन से ईश्वर नहीं मिलता। यही मेरे अब तक के जीवन का सार है।'

'मैंने इंजीनियर बन कर विज्ञान की सेवा की और संसार को मानव के लिए बेहतर बनाने में अपना योगदान दिया। मैंने एग्जीक्यूटिव बन कर सैकड़ों लोगों को अपने व्यावसायिक जीवन में मेंटोर किया और उनके गंतव्य तक पहुँचाया। सेवानिवृत्ति के पश्चात् भी मैं कर्त्तव्य- विमुख नहीं हूँ। ईश्वर की जो असीम कृपा मुझ पर रही है; उसके बदले में मैंने उसकी निर्बल रचना की आजीवन सेवा करने का व्रत लिया है। इसलिए मैं बनी सर्वेंट लीडर रोज़मेरी किंग, एग्जीक्यूटिव डायरेक्टर वर्ल्ड विज़न। तुम केविन? तुम ने पलायन किया है। क्या तुम ईश्वर को प्राप्त कर सके? तुम से रेड लाइट डिस्ट्रिक्ट में स्त्री के शारीरिक घाव सहन नहीं हुए और उस स्त्री का क्या जिसकी आत्मा को तुमने इतने घाव दिए कि वह उनका हिसाब तक रखना भूल गई? आत्मा के यह घाव न तो किसी को दृष्टिगत होते हैं और ना ही उनकी पीड़ा का अनुभव होता है। केविन, तुम परजीवी हो। न केवल तुमने मेरा रक्तपान किया है बल्कि मुझे पग-पग पर छला है। जानते हो ईश्वर की दृष्टि में छला जाने वाला व्यक्ति छलने वाले से श्रेष्ठ है और जो ईश्वर की दृष्टि में श्रेष्ठ है, वही सर्वश्रेष्ठ है'।

आज फिर सूर्य अस्त हो रहा था। उसकी लालिमा से रोज़मेरी का आत्मविश्वास से भरा मुख और दमक उठा था और गहराती शाम की कालिमा से केविन का मुख काला पड़ता जा रहा था।

❐

बड़ा लुत्फ था जब कुँवारे थे...

अशोक मिश्र

जो लोग आज कुँवारे हैं, वे उस सुख का अंदाजा नहीं लगा सकते हैं, जो सुख विवाहितों ने अपने कुँवारेपन में उठाया था। सुख हो या दुख, स्वतंत्रता हो या गुलामी, जब तक एक-दूसरे के सापेक्ष नहीं होते हैं, तब तक उनका महत्त्व समझ में नहीं आता है। आज वैवाहिक जीवन के सुखों को देखते हुए कहा जा सकता है कि सचमुच...बहुत सुख था, जब कुँवारे थे हम सब।

अगर मैं अपनी बात करूँ, तो यह कह सकता हूँ कि तब आधी-आधी रात तक मटरगश्ती करने के बाद भी कोई यह पूछने वाला नहीं था कि इतनी देर कहाँ रहे। सुबह देर तक सोओ, रात भर जागो, मन हो, तो किसी दोस्त के घर या हॉस्टल में रुक जाओ। नौकरी करो या न करो, कोई फर्क नहीं पड़ता था उन दिनों। क्या मौज के दिन थे। दोस्तों से उधार पर उधार लेता जाता था, जब सात-आठ हज़ार रुपये उधार हो जाते थे, तब कहना पड़ता था, 'यार! बड़ा कर्ज़दार हो गया हूँ, कहीं कोई नौकरी दिलाओ।' जिनको अपना कर्ज़ वसूलना होता था, वे भाग-दौड़ करके किसी अखबार या पत्रिका में छोटी-मोटी नौकरी दिला दिया करते थे। जैसे ही सभी दोस्तों का क़र्ज़ा चुकता, नौकरी को लात मारकर परम स्वतंत्र हो जाते थे।

यह सुख शादी के बाद तो जैसे आकाश कुसुम हो गया। अब तो हाल यह है कि जैसे ही बॉस नाराज़ होते हैं, धुकधुकी-सी सवार हो जाती है, 'हाय...नौकरी बचेगी या जाएगी। इस उम्र में अब कौन देगा नौकरी? नौकरी गई, तो इस बार चुन्नू की फीस कैसे जाएगी, मुन्नी की फ्रॉक कैसे आएगी? तमाम चिंताएं सवार हो जाती हैं सिर पर।' नतीजतन, बॉस की लल्लो-चप्पो करनी पड़ती है। उनकी दो-चार झिड़कियाँ सहनी पड़ती हैं, मौका दें, तो उनके घर की सब्जियाँ लाने से लेकर टेलीफ़ोन, बिजली के बिल जमा करने को भी तैयार हो जाता हूँ। भले ही अपने घर का गेहूँ चक्की पर पाँच दिन पड़ा रहे, लेकिन बॉस का चेक जमा कराने को हमेशा तैयार रहना पड़ता है। और यह सब 'शादी का लड्डू' खाने का नतीजा है। बॉस के नाराज़ होने की बात जैसे ही घरैतिन को पता चलती है, उनका रेडियो 'सीलोन' चालू हो जाता है, 'कितनी बार समझाया है कि सबसे हिल-मिलकर रहो। अगर बॉस कुछ कहें, तो सिर झुकाकर सुन लो। अगर दो-चार बातें आफिस में सुन ही लोगे, तो तुम्हारा क्या बिगड़ जाएगा।'

अब घरैतिन को कौन यह समझाए कि शादी से पहले क्या मजाल थी, कोई बॉस-फॉस कुछ कहकर निकल जाए। नाक पर गुस्सा और जेब में इस्तीफा हम कुँवारों की शान हुआ करता था। इधर बॉस के मुँह से बात निकलती भी नहीं थी कि इस्तीफा उनकी मेज़ पर और अलविदा कहते हुए दो-चार लोगों से हाथ-साथ भी मिला चुके होते थे। सच्ची...कित्ता मज़ा आता था, जब कुँवारे थे हम।

अब तो हालत धोबी के कुत्ते जैसी हो गई है। दोस्तों से मिलना हो, तो बहाना बनाना पड़ता है, 'डार्लिंग! जाम में फँसा हुआ हूँ...घर पहुँचने में थोड़ी देर लगेगी।' घर पहुँचो, तो एक अलग झमेला, 'इतनी देर कहाँ लगा दी? पड़ोस वाले वर्मा जी तो शाम को छह बजे ही घर आ जाते हैं। आजकल किसी से नैन मटक्का तो नहीं कर रहे हैं। सच्ची बात बताइएगा...खाइए मेरी कसम कि आपका किसी के साथ लफड़ा नहीं है। दो महीने से देख रही हूँ, आप कुछ उखड़े-उखड़े से हैं। रमेश बता रहा था कि ऑफिस में आजकल उस कलमुँही के साथ कुछ ज्यादा ही टाइम बिताते हैं।' मेरे एक सीनियर हैं...नाम आप कुछ भी रख सकते हैं। थोड़ी देर के लिए अखिल..निखिल..रमेश-सुरेश कुछ भी रख लेते हैं। जब वे किसी दिन कहीं बैठे हुए 'सटक' मार (शराब पी रहे) हों और घर से फ़ोन आ जाए, तो कहते हैं, 'अभी आफिस में हूँ। हेड ऑफिस से कुछ बॉस टाइप के लोग आए हुए हैं। उनके साथ मीटिंग चल रही है। घंटे-आधे घंटे में आता हूँ।'

हाय...वे भी क्या दिन थे...जब हम सारे कुँवारे दोस्त घर से उपेक्षित किंतु मित्रों में लोकप्रिय हुआ करते थे। पसंदीदा लड़की की एक झलक पाने के लिए मई-जून की दुपहरिया में छत पर खड़े उनके घर की ओर ताका करते थे और ताकते-ताकते आँखें बटन हो जाती थीं। एक ही पैंट-शर्ट को हफ्ते तक पहने मजनू की तरह दाढ़ी-बाल बढ़ाए घूमा करते थे। उस सुख की सिर्फ अब तो कल्पना ही की जा सकती है। न रोज़ नहाने की प्रतिबद्धता, न रोज़ दाढ़ी बनाने का झंझट, न रोज़ बिस्तर झाड़ने की जहमत। जब तक शरीर से बदबू न आने लगे, तब शरीर पर पानी डालना भी गुनाह था। पैर लाख गंदे हों, घुस जाओ बिस्तर में। ऐसी स्वतंत्रता अब कहाँ। जीवन के हर मोड़ पर घरैतिन किसी प्रवीण मास्टरनी की तरह छड़ी लेकर हाज़िर हैं। माघ-पूस में आधी रात को भी बिना पैर धुलवाए बिस्तर पर चढ़ गए, तो खैर नहीं।

अब तो मन रो-रो कर यही कहता है, 'कोई लौटा दे मेरे...बीते हुए दिन।'

❐

ashok1mishra@gmail.com

मरी का, अमरी का अर्थात अमरीका

संजय झाला

मैं बड़ा स्वप्न द्रष्टा टाइप व्यक्ति हूँ। ये जो स्वप्न द्रष्टा होते हैं, वे दो प्रकार के सपने देखते हैं, एक अमरीका के, एक हसीन पड़ोसनों के। दोनों के यहाँ जाते नहीं बनता और जाते हैं ; तो आते नहीं बनता। अमरीका जाने से पूर्व मैं अमरीका के बारे में इतना ही जानता था कि अमरीका में 'अमर' और 'मरी' सम्मिलित है या अमरीका का नाम और चरित्र मेरी दूर के रिश्ते की बूढ़ी अम्मा 'अमरी' बाई से बहुत मिलता है। अमरी अम्मा के पोते से जब पूछा जाता कि वो किसका है? वो छाती जैसी कोई चीज़ ठोक कर कहता 'मैं अमरी का हूँ।' हम उसी की छाती पीटकर कहते तू 'मरी' का है। अमरीका से मेरा इतना ही रिश्ता रहा है।

अन्तराष्ट्रीय हिन्दी समिति के काव्य प्रेम से वशीभूत होकर मैं दो अभूतों के साथ अमेरिका गया। सोचकर तो यह गया था कि अमरीका को भारत बना कर लौटूँगा। मेरे लौटने के बाद जब प्रधान मंत्री जी अमरीका जाएँगे तो न्यूयार्क एअरपोर्ट पर लिखा पायेंगे, दिल्ली नगर निगम आपका हृदय से स्वागत करता है। यात्री अपने सामान की रक्षा स्वयं करे, जेब कतरों से सावधान रहें।

अमरीका की शक्ति मैं अमरीका पहुँचकर ही जान पाया। इतने सारे भारतीय अमरीका में रहते हैं, लेकिन अभी तक अमरीका अमरीका बना हुआ है और अपने मूल स्वरूप में है। मैं ऐसे भारतीयों पर लानतें भेजता हूँ; जिनकी वजह से हम अभी तक वाशिंगटन की सीमा पर यह बोर्ड नहीं लगा पाए कि यूपी पुलिस (बोर्ड के नीचे उस शराब के ठेकेदार का नाम लिखा होता है, जो थाने और बोर्ड दोनों का खर्चा उठाता है।) ऐसे भारतीय अपराधी हैं, जो न्यूयार्क बस स्टैंडों पर ये शाश्वत सूत्र मुद्रित नहीं करवा पाए कि गुप्त रोगी निराश न हों बस एक बार मिले हकीम जिस्मानी से। ये देश ऐसे स्वार्थी लोगों को कभी माफ़ नहीं करेगा।

मैंने अमरीका पहुँचते ही भारत से उसकी तुलना करते हुए अमरीका को कहीं मुँह दिखाने लायक नहीं छोड़ा। वहाँ बाज़ार चौड़े, यहाँ हम चौड़े, बाज़ार सँकरे। वहाँ हर व्यक्ति के हाथ से की गई सफाई देखने को मिलती है, यहाँ 'हाथ की सफाई देखने' को मिलती है। पेशाब घर तक इतने साफ़ कि गंदे होने जाने की आशंका से लघु अथवा शीघ्र शंका करने का मन ही नहीं करता; इस चक्कर में कुछ देर में हम गंदे हो जाते हैं। वहाँ बात-बात पर आदमी सॉरी फील करता है, ऐसा लगता है अमरीका में हर आदमी घर से सॉरी / एक्सक्यूज़ फील करने के लिए ही वॉक पर निकलता है। वहाँ आदमी 'धूप' खाने के लिए, नंगा होता है यहाँ 'धन' खाने के लिए नंगा होता है। वहाँ अपने काम से काम रखते हैं। यहाँ अपने काम को छोड़कर सबके काम से काम रखते हैं। वहाँ का ट्रैफिक ट्रक-कारों से एक निश्चित दूरी बनाकर चलता है; ऐसा लगता है; इन ट्रकों ने कारों का स्पर्श भी लिया तो उसका ब्रह्मचर्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा।

यह मेरे सम्मान की पराकाष्ठा थी; जब मैं डालस में मॉर्निंग वॉक पर निकला तो ट्रैफिक थम सा गया। मैं भावुक हो गया, एक कवि का यहाँ इतना सम्मान। मेरा एक साथी बोला ये सम्मान नहीं अपमान कर रहे हैं; तुम सड़क के बीचों-बीच चल रहे हो। अभी यहाँ आदमी को कुचल कर आगे बढ़ने की परम्पराएँ विकसित नहीं हुई हैं। यहाँ पैदल यात्रियों को अभी तक मनुष्य की ही संज्ञा दी जाती है। भारत में पैदल चलने वाले को स्थान प्रायः बसों, ट्रकों, कारों, टायरों की बाँहों में होता है और जैसा कि आप जानते हैं,बाँहों में तेरे मस्ती के घेरे। यहाँ कॉमन मैन किसी भी आवेदन में स्थायी निवास स्थान के कालम में लिखता है, मिस्टर कॉमन मैन ब्लू लाइन, रोडवेज़ बसों के टायरों के नीचे, नेहरू पथ-गाँधी मार्ग, नई दिल्ली। अमरीका में ट्रैफिक सतत गतिमान रहते हुए स्त्री जाति के प्रति अपनी रुचि नहीं दिखाता है। यहाँ ट्रैफिक स्त्रियों को देखकर प्रायः तब तक गतिमान होता है; जब तक चालक और वाहन संयुक्त रूप से क्षतिमान नहीं हो जाते।

क्या खाकर अमेरिका हमसे मुकाबला करेगा। तुलसीदास जी के मुताबिक भारत की भाँति अमेरिका में भी भाँति-भाँति के लोग हैं; जो आकार-विकार में भाँति-भाँति के हैं। सबसे हिल मिल कर चलते हैं। कहाँ पाँच -पाँच लोगों के अन्तर्लयन से एक-एक आदमी बना है, काला हो या गोरा; कभी ये भाव मन में नहीं आता, राधा क्यों गोरी, मैं क्यों काला? अमेरिका की प्रकृति स्थिरता वाली है, आदमी पड़ा है तो पड़ा है, खड़ा है तो खड़ा है। वहाँ पड़ा हो अथवा खड़ा, हर स्थिति में अपना काम खुद करता है; जबकि भारत में हर पड़ा व्यक्ति हर खड़े व्यक्ति को काम पर लगा देता है। जैसे पानी देना, टी.वी. बंद कर देना, अखबार देना इत्यादि भावों के साथ।

पूरा अमेरिका आलू की चिप्स, कोक और नैपकिन पर टिका है, जबकि भारत चाय, जर्दे और गुटखे पर टिका है। जहाँ तक नैपकिन का सवाल है, हम वार-त्योहार हाथ पौंछा करते हैं। हम कीटाणुओं की वजह से हाथ धोने की अपेक्षा ज़िन्दगी से हाथ धोने को प्राथमिकता देते हैं।

अमरीका के अधिकतम शहरों में हमेशा

अघोषित कर्फ्यू रहता है। वहाँ आदमी घर से बाहर नहीं निकलता, यहाँ आदमी घर में नहीं घुसता। घर में घुसते ही नल, बिजली, पानी और राशन की समस्या इन सब पर भारी लुगाई। घर में घुसपैठियों की तरह घुसते हैं। बाहर अमरीका बने फिरते हैं,घर में घुसते ही बांगलादेश हो जाते हैं।

अमरीका में माँ-बाप भी कदाचित अकेले रहना पसंद करते हैं। अगर अकेले नहीं रहते तो वो कभी माँ-बाप नहीं बन सकते थे। माँ-बाप बच्चे की पूरी ज़िम्मेदारी अकेले निभाते हैं और बच्चों की शादी करते ही उन्हें माँ-बाप बनने के लिए अकेला छोड़ देते हैं। वहाँ भारतीय लड़कियाँ प्राय: अमरीकन लड़कों पर भरोसा करती हैं और अमरीकन लड़कियाँ भारतीय लड़कों पर क्यूँकि दोनों देशों की लड़कियाँ अपने देश के लड़कों का चरित्र जानती हैं। वैसे लड़का नेपाल का हो या अमरीका का, चरित्र के मामले में वैश्विक है। आबादी के मामले में अमरीका की जितनी जन संख्या है, उतने तो हमारे यहाँ देवी देवता हैं। अच्छा है ये बेचारे देवी-देवता रोटी-कपड़ा मकान नहीं माँगते। वरना यहाँ भक्त ऐसे हैं, जो भगवान् को दिखाते हैं; खुद खाते हैं।

अमरीका में मन्दिर भव्य हैं। भारतीय देवताओं को वहाँ शिफ्ट प्रवासी देवता बनने पर विचार करना चाहिए। कितना अच्छा होगा जब भारतीय और प्रवासी देवता, हालाँकि बात एक ही है, एक साथ भारत विकास हेतु प्रवासी सम्मेलन में भाग लेंगे और भाग लेने के पश्चात तुरंत भाग लेंगे।

हमने अमरीका जाकर भारत को बहुत याद किया। भारत आकर अमरीका को याद कर रहा हूँ। हमारी फ़ितरत है ही ऐसी; प्रेमिकाओं के पास होते हैं, पत्नियों को याद करते हैं, पत्नी के पास आते ही प्रेमिकाओं को याद करने लगते हैं। इस प्रकार पत्नी और प्रेमिका दोनों का महत्त्व बना रहता है।

अमरीका में बसे भारतीयों की भी यही स्थिति है। जो भी हो उनके दिलों में भारत धड़कता है। वे अमेरिका में रहकर अधिक देश प्रेमी सहिष्णु व उदार हैं। अपने मोहल्ले, गलियों की गंध उन्हें सोने नहीं देती। वहाँ 'सपने' ज़्यादा लेकिन 'अपने' कम हैं। मेरा मानना है, जहाँ अपने और अपने जैसे नहीं हों; वहाँ, उनके साथ नहीं रहना चाहिए चाहे, वह स्थान स्वर्ग और साथी देवता ही क्यों न हों।

❐

kavisanjayjhala@gmail.com

लघुकथा

अपनी ही मूर्त्ति

राजेन्द्र यादव

वे उस मूर्त्ति के सामने खड़े थे। मूर्त्ति स्वयं उनकी अपनी थी। कल इस मूर्त्ति को शहर के सबसे बड़े और व्यस्त चौराहे के बीच ऊँचे आधार स्तम्भ पर प्रतिष्ठित किया जाएगा क्रेनों की मदद से। स्वयं मूर्त्ति भी बीस फीट से कम क्या होगी। वे बड़ी मुश्किल से उसके घुटनों तक पहुँच पाते थे। हाँ, उसकी सम्पूर्ण गरिमा को दूर खड़े होकर ही देखा जा सकता था। दुनिया के बेहतरीन पत्थर के एक बड़े ब्लॉक को तराशकर उसे निकाला गया था देश के सबसे बड़े शिल्पी द्वारा। उनके इशारे पर बड़े बड़े पूँजीपतियों ने करोड़ों रुपए इस मूर्त्ति-निधि में दिए थे। अगर वे स्वयं इस मूर्त्ति में इतनी दिलचस्पी न लेते तो सचमुच यह प्रतिमा इतनी भव्य नहीं बन सकती थी। वे प्रसन्न थे।

दूर से उन्होंने मूर्त्ति को देखा था चेहरे पर संकल्प,निष्ठा और त्याग का दिव्य तेज,वस्त्रों में सादगी और सुरुचि, खड़े होने की मुद्रा में आभिजात्य,विनम्रता की लय..आँखों का भाव इस तरह का कि किसी भी कोण से देखो, लगता था वह सिर्फ़ आपको ही मुखातिब हैं। देखकर स्वयं श्रद्धा से सिर झुकाने को मन करता। उन्हें लगता ही नहीं था कि उनकी अपनी मूर्त्ति है। लगता, जैसे वह कोई दूसरा है, बहुत दूर, बहुत बड़ा और बहुत महान्, जब वे खुद विश्वास नहीं कर पा रहे तो क्या दूसरे लोग या आने वाली पीढ़ियाँ विश्वास करेंगी कि ऐसा महान् और मानवोपरि इंसान सचमुच इस दुनिया में कभी रहा होगा। स्वयं अपने जीते जी अपनी ही मूर्त्ति लगाई जाए और उसका अनावरण भी वे ही करें, यह बात कहीं भीतर उन्हें भी अनुचित लग रही थी, मगर फिर मन को समझा लिया कि दुनिया के अनेक देशों में ऐसी पसरम्पराएँ रही हैं। दक्षिण भारत में विशेषकर तमिलनाडु में तो अनेक नेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं की मूर्त्तियाँ उनके जीवन काल में ही लगीं और स्वयं उन्होंने उन प्रतिमाओं का अनावरण किया। इसमें अशोभनीय कुछ नहीं है।

जिस क्षण से इस मूर्त्ति को उनके बड़े से लॉन में रखा गया था, तभी से वे एक अजीब रोमांच अनुभव कर रहे थे। दिन में, अनेक लोगों के सामने तो उन्होंने उदासीनता और तटस्थता का भाव बनाए रखा, मगर अब रात में इस अभिनय को साधे रखना असंभव हो गया। आधी रात को वे दबे पाँव निकले और पहले तो आड़ में खड़े होकर दूर से ही मूर्त्ति को मुग्ध भाव से देखते रहे। उन्हें खुद याद नहीं कि वे कब खिंचे हुए से मूर्त्ति के ठीक नीचे आ खड़े हुए और ऊपर टकटकी लगाए देखते रहे...फिर उन्होंने हाथ ऊँचा करके उसको छूने की कोशिश की, सचमुच बहुत उचककर ही घुटनों को छुआ जा सकता था। छूने पर महसूस हुआ कि पत्थर बहुत ठोस, सख्त और भारी है। वे घुटनों पर हाथ फेरते रहे।

वजन और घनत्व का अंदाजा लगाने के लिए उन्होंने हाथ लगाकर ज़ोर लगाया। हिलने या कहीं भी डगमगाने का कोई सवाल ही नहीं था। उन्होंने दोनों हाथों से ज़ोर लगाकर हिलाने की कोशिश की। जब इन अनमनी कोशिशों से कुछ नहीं हुआ तो भीतर चुनौती जैसा अहसास जागने लगा और वे सचमुच ज़ोर आजमाने लगे। कब यह कोशिश एक जुनूनी ज़िद में बदल गई, उन्हें नहीं मालूम। वे पागलों की तरह दोनों हाथों से मूर्त्ति को आगे पीछे हिलाने की कोशिश में जुटे थे। उन्हें लगा, मूर्त्ति कुछ हिली।

सुबह लोगों को गिरी हुई मूर्त्ति के नीचे दबा उनका शरीर निकालने के लिए क्रेनों की सहायता लेनी पड़ी।

❐

नातूरः कहानी के भीतर कहानीः एक अंतर्पाठ

साधना अग्रवाल

राजेन्द्र यादव से कहानी लिखना बहुत पहले पीछे छूट चुका था। लेकिन वे इसे मानने को तैयार नहीं थे। 'हंस' जैसी प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका के वे संपादक थे। कौन उनको रोकता। अर्से बाद बीसवीं सदी के अंतिम दशक में उनकी एक महत्वाकांक्षी कहानी 'हासिल' नामवर जी की संक्षिप्त भूमिका के साथ छपी। यह कहानी कहीं से राजनीतिक नहीं थी। यदि इस कहानी की व्यापक चर्चा हुई तो इस कारण कि इसे राजेन्द्र यादव ने लिखा था। लेकिन अपनी इस कहानी से सेक्स सम्बंधों का जैसा आध्यात्मिक समीकरण उन्होंने बनाया था, उससे पृथ्वी तो बाद में, हिंदी कहानी पहले हिल गई। मानवीय प्रेम की तमाम नैतिक उष्मा तज कर उन्होंने यह कहानी लिखी थी। स्वभावतः उनकी इस कहानी पर विवाद उठा, बेशक अश्लीलता का आरोप नहीं लगाया गया। उनकी कहानी छपने के कुछ समय बाद 'हंस' में ही लवलीन की एक कहानी 'चक्रवात' छपी, इस कहानी में भी प्रेम और सेक्स का द्वंद्व था और विवाहेतर सम्बंधों की छौंक। चूँकि राजेन्द्र जी 'हंस' में इस तरह की कहानियाँ छापते हैं। कृष्ण बिहारी की कहानी 'दो औरतें' भी छपी, जिस पर भी विवाद उठा। कहानी की इस प्रवृत्ति को आगे बढ़ाया रमणिका गुप्ता ने। मेरे कहने का मतलब यह है कि अब यथार्थ के नाम पर हिंदी कहानी में स्त्री देह और संभोग का विमर्श था और राजेन्द्र जी का कमाल यह था कि वे स्त्री विमर्श के नाम पर इसे छाप रहे थे।

कृष्ण बिहारी 'दो औरते' कहानी से न केवल चर्चित हुए बल्कि समकालीन कहानी में स्थापित भी हुए। दशकों से अबूधावी में रहते-अध्यापन करते हुए उन्होंने देशी-विदेशी परिवेश की अनेक कहानियाँ लिखी हैं और उनके कई कहानी संग्रह भी आए हैं। उनकी अधिकांश कहानियों के केन्द्र में स्त्री होती है और उसके इर्द-गिर्द दबी-छिपी स्त्री देह की इच्छाएँ। वैसे वे उपभोक्तावादी बाज़ार -संस्कृति को कभी ओझल नहीं करते। कृष्ण बिहारी की 'नातूर' कहानी 'हंस' के मार्च २००३ अंक में छपी थी। यह एक अच्छी कहानी है; जिसके केन्द्र में अफगानिस्तान के शहर में स्थित ३५ मंज़िला बिल्डिंग है। नातूर यानी बिल्डिंग का चौकीदार पाकिस्तानी बादशाह खान है; जो नमाज़ी है और नैतिकता तथा कायदे-कानून को मानने वाला है। बादशाह खान सहरा टॉवर में नातूर का काम करता है लेकिन वह खुद को बादशाह समझने का भ्रम पाले हुए है क्योंकि उसका सोचना है कि असली मालिक का क्या है, वह तो कभी झाँकने भी नहीं आया कि बिल्डिंग कैसे बन रही है। . . . उसे तो किराए से होने वाली हर वर्ष करोड़ों की रकम से मतलब है। पैंतीस मंज़िला इस बिल्डिंग में कुल फ़्लैटों की संख्या १९५ थी। बिल्डिंग का नक्शा जर्मन आर्किटेक्ट ने बनाया था; जिसका टेनेंसी कांटैक्ट बिल्डिंग का फिलिस्तानी मैनेजर यासर बनाएगा और मालिक से साइन कराकर बादशाह खान को देगा। लेकिन यह सब तब होगा जब बादशाह खान किराएदार को देखकर संतुष्ट हो जाएगा। बादशाह खान का छोटा भाई शादाब खान उसके ठीक विपरीत था, औरत और शराब उसकी कमज़ोरी थी। बादशाह खान चौकीदारी के अलावा किराएदारों की कार धोने का अतिरिक्त काम इसलिए करता था क्योंकि वह जल्द से जल्द बहुत पैसा कमाकर अपने देश में छूटी अपनी बीवी सायरा और सात बच्चों की परवरिश अच्छे से कर सके क्योंकि इस देश का कानून ही ऐसा था कि सरकार फैमिली वीज़ा उसी को देती थी; जिसका मासिक वेतन तीस हज़ार पाकिस्तानी रुपए हो।

यही कारण था कि अकेलेपन का तनाव झेलने वालों के लिए इस शहर में दुनिया के हर देश की औरतें खुलेआम बिकने के लिए हर समय और हर कहीं मौजूद थीं। खान को गरीब मुल्कों से झांसा देकर लाई और धंधे में लगाई गई औरतों की मजबूरी पर जहाँ तरस आता था, वहीं बिना बीवियों के सालों-साल अलग रहने वालों की जिस्मानी ज़रूरत भी समझ में आती थी। मगर मजबूर औरतों के अलावा धनी घरों की लड़कियाँ और औरतें भी बदचलन हो गईं, जिनको खान बर्दाश्त नहीं करता इसलिए उसने तय कर रखा था कि शहर में जो भी होता हो लेकिन अपनी बिल्डिंग में वह यह सब कभी न होने देगा।

बादशाह खान इसलिए केवल परिवार वालों को ही फ़्लैट किराए पर देने की सिफारिश की स्लिप देता था। अकेले पुरुष को रहने की यहाँ अनुमति नहीं मिलती। मुसलमान होने के बावजूद किसी पाकिस्तानी, फिलिस्तीनी और मिसिरी को फ़्लैट नहीं देता था, भले उनका परिवार ही क्यों न हो। फिलिस्तीनियों और मिसिरी औरतों के बारे में वह एक वाक्य बोलना नहीं भूलता कि 'संभोग के समय वे इतनी सीत्कारें भरती हैं कि पड़ोसी पागल हो जाते हैं।' उसे भारतीय और यूरोपियन अच्छे लगते थे, वह उन्हें सफाई पसंद समझता था।

ऐसे में एक भारतीय रामकृपाल को वह फ़्लैट इस शर्त पर देता है कि वह दो महीने बाद अपनी पत्नी को लाएगा जिससे चार महीने पहले ही उसकी शादी हुई है। वह पहले यहाँ सारा इंतजाम ठीक करना चाहता है। खान रामकृपाल पर विश्वास कर लेता है। दूसरी तरफ खान का भाई शादाब रामकृपाल को, जब तक पत्नी नहीं आती है, ऐश-मौज करने को उकसाता है। तभी एक रेस्तरां में रामकृपाल की मुलाकात एक रशियन लड़की डॉयना से होती है; जो अपना विजिटिंग कार्ड रामकृपाल को देती है; जो अंग्रेज़ी में लिखा था, जिसका मतलब था- 'नाम डॉयना . . .वतन कजाकिस्तान. अवस्था २४ वर्ष। हाइट पाँच फिट सात इंच। स्लिम। फेयर। ब्रेस्टस टाइट। कमर २८ इंच। टमी बिल्कुल नहीं। हिप्स ३८ इंच। थाइस २४ इंच। लेग्स वेक्सड। अनवांटेड हेयर्स रिमूव्ड। कंडोम यूजर। मेडिकली चेक्ड । प्योरली प्रोफेशनल। रेट २५ डॉलर पर शॉट . . या . . फिर १०० डॉलर एंड ड्रिंक्स प्लस डिनर . . फॉर फुल नाइट . कांटैक्ट मोबाइल नं० . .।'

एक दिन डॉयना रामकृपाल से मिलने उसके फ़्लैट पर जाती है कि बादशाह खान को शक हो जाता है कि कहीं कुछ गड़बड़ है। खान और डायना

में कहा सुनी हो जाती है यहाँ तक कि डॉयना खान के ऊपर सैंडिल भी उठा देती है। खान पुलिस को बुला लेता है लेकिन पुलिस को कुछ भी गड़बड़ी नहीं मिलती और वह खान को समझाने की कोशिश भी करती है कि 'खान, ये मुल्क ऊपर से मरद का और अंदर से औरत का है। ये औरत जो कहेगी वही सच माना जाएगा और तुम फरिश्ते की औलाद होकर भी अपना सच साबित नहीं कर पाओगे .।'

पुलिस की तरफ से मिली निराशा के बावजूद खान हिम्मत नहीं हारता और अपने अपमान का बदला लेना चाहता है। खान अंत में बिल्डिंग के मालिक रवाब को फ़ोन कर यहाँ आकर मामले को देखने का अनुरोध करता है। एक नातूर के बुलाने पर यद्यपि रवाब आता तो है लेकिन खान को उसकी हैसियत की याद दिलाता है कि वह मात्र नौकर है, इस पर खान उत्तेजित हो जाता है कि 'रवाब . . . यह मेरा गर ता . . . मेरा गर . . . मेरा इबादतखाना . . . मैं इसमें नमाज़ पढ़ता था . . . मैंने इसमें कबी कोई गलत काम नई ओने दिया . . .।'

खान ने सपने में भी नहीं सोचा था कि मालिक उसकी बात पर विश्वास न करके उसको नौकर होने की हैसियत और अपनी सीमा में रहने का निर्देश देगा और उसके सच को झुठलाएगा। रवाब को लगा कि खान पागल हो गया है। उसने मैनेजर को निर्देश दिया कि पहली फ़्लाइट से खान को उसके देश भेज दे। पुलिस चली गई थी, रवाब भी चला गया था और हतप्रभ स्तब्ध खान भी बिल्डिंग के बाहर निकल गया और डॉयना रामकृपाल के साथ फ़्लैट में चली जाती है।

ऊपर से देखने पर यह कहानी यदि एक ओर नष्ट हो रहे एक मुल्क की अराजक कानून व्यवस्था की ओर संकेत करती है तो दूसरी ओर लगातार गिरती अर्थव्यवस्था की। हैरानी की बात यह है देश की अपनी करेंसी का कोई मूल्य नहीं, पाकिस्तानी रुपए का बोलवाला है। कानून के अनुसार प्रवासी व्यक्ति या पर्यटक की यदि तीस हज़ार पाकिस्तानी रुपये प्रतिमाह से कम आय है तो उसे फेमिली वीज़ा सरकार नहीं देती। देश में वेश्यावृत्ति की छूट है। रेस्त्राँ में रामकृपाल से डॉयना की मुलाकात और अपने फ़्लैट पर उसके बुलाए जाने पर नातूर द्वारा किया गया हंगामा इसके उदाहरण हैं।

इस कहानी के मुख्य पात्र तो बादशाह खान और रामकृपाल हैं लेकिन असली कहानी खुलती है डॉयना से। खान का भाई शादाब पृष्ठभूमि में है। पाकिस्तानी मूल का खान नेकदिल, ख़ुदा की इबादत करने वाला सच्चा मुसलमान है जो अपनी बिल्डिंग को रंडीखाना नहीं बनने देना चाहता। दरअसल वह बेहद दिलचस्प कैरेक्टर है, जो एक तरफ स्वप्नदर्शी है तो दूसरी तरफ नैतिकता का चौकीदार। चूँकि उसका नाम बादशाह खान है, वह अपने को बिल्डिंग का बादशाह ही समझता है क्योंकि उसके पर्चा देने से ही किराएदार को फ़्लैट आवंटित होता है। खान में थोड़ी-सी राजनीतिक चेतना है और वह सेक्यूलर भी है क्योंकि वह मुसलमान होते हुए भी पाकिस्तानियों, फिलिस्तीनियों और मिसिरियों को फ़्लैट नहीं देता क्योंकि वे गंदे होते हैं। इसके विपरीत वह हिंदुस्तानियों और यूरोपियनों को फ़्लैट देता है क्योंकि वे सफाई पसंद होते हैं। रामकृपाल जब बिल्डिंग में सिंगल फ़्लैट लेने के लिए पूछताछ करता है तो खान यह जानकर कि यह हिंदुस्तानी है, उससे पूछता है-'तुम क्या उदर का हिंदू अय . . .उदर जिदर बाबर का मस्जिद तोड़ा . . .' रामकृपाल का प्रत्युत्तर-'खान . . . मैं हिंदू हूँ और अयोध्या के बहुत पास फैजाबाद का रहने वाला हूँ मगर मैंने मस्जिद नहीं तोड़ी . . . कोई हिंदू मस्जिद नहीं तोड़ता . . . मैंने तो वह जगह भी नहीं देखी . . .क्या तुमने अफगानिस्तान में बुद्ध की मूर्तियाँ तोड़ी . . . तुम थे उन लोगों में . . .?' उसके सवाल से स्तब्ध खान उसको फ़्लैट देने को तैयार हो जाता है। दरअसल खान भोला भाला निश्छल इंसान पहले है, बाद में मुसलमान। वह चाहता है खूब पैसा कमाकर अपने वतन अपनी बीवी और बच्चों के पास लौट जाए। वह कोशिश भी करता है। लेकिन उसका सपना क्रूर यथार्थ से टकराकर चकनाचूर हो जाता है। अपने नाम को लेकर उसको भ्रम हुआ और इसी भ्रम के कारण बादशाह से वह नौकर बना। लेकिन यह एक अविस्मरणीय पात्र है, यह तो मानना ही पड़ेगा।

एक जगह इस कहानी में संकेत है 'और अब जबकि बिल्डिंग बनकर पूरी हो चुकी थी और अफगानिस्तान भी तालिबान से मुक्त होकर हामिद करजई के अस्थायी शासन में आ चुका था तो विदेशी मुद्रा की अहमियत ज़्यादा होनी ही थी।' यह वहाँ की अर्थव्यवस्था पर टिप्पणी है, जबकि हकीकत यह है कि अफगानिस्तान अब भी तालिवान और पाकिस्तान के चंगुल में आतंकवाद से घिरा है। पिछले दिनों अतिक रहिमी का एक उपन्यास आया है 'संगेसवूर', जिसमें अफगानी मूल की लेखिका ने जो अब लंदन में है, अफगानिस्तान में तालिवान के क्रूर अत्याचार का लोमहर्षक विवरण दिया है।

फ़्लैशबैक से शुरू इस कहानी का नैरेटर, जो खुद कहानीकार है, का संकल्प है-'कहानी बादशाह खान की है। उसके सपनों की है। उसके पैसा कमाने और अपने वतन लौट जाने की है। यह रामकृपाल की कहानी नहीं है। रामकृपाल जैसे लोगों से दुनिया भरी पड़ी है; जो अपने तर्कों सें दुनिया के हर मसले को अपने लाभ के लिए अपने पक्ष में कर लेते हैं। इसलिए कहानी कभी उन लोगों की होती भी नहीं। और, इसलिए मैं इस कहानी को रामकृपाल की कहानी नहीं बनने दूँगा। कहानी तो बादशाह खान जैसे किसी एक की होती है, जो अपने जैसे हज़ारों में से कोई एक बिल्कुल अलग होता है . . .और शायद तभी वह बादशाह होता है . . .अपनी मर्ज़ी का मालिक . . .।' लेकिन विडम्बना यह है कि बादशाह के केन्द्र में होते हुए भी अंततः यह रामकृपाल और डॉयना की कहानी बन गई है क्योंकि बादशाह खान के स्वप्न, स्वाभिमान और ज़िद को डॉयना ने चुनौती ही नहीं दी, बल्कि वहाँ की पुलिस और खुद बिल्डिंग के मालिक रवाब ने बादशाह खान का भ्रम तोड़ते उसे पागल घोषित कर दिया। वस्तुतः यह कहानी यदि एक ओर यथार्थ की विद्रूपता की है तो दूसरी ओर कानून व्यवस्था की विडम्बना की। कहानी किंचित लंबी है, लेकिन उबाऊ नहीं। बल्कि बेहद दिलचस्प और पठनीय। इस कहानी में यथार्थ की मुठभेड़ यथार्थ से होती है और इस टकराहट से कहानी के भीतर से जो कहानी निकलती है, कारुणिक और मार्मिक होते हुए भी अपने समय का यथार्थ ही है, जिसे खूबसूरत भाषा-शैली में कृष्णबिहारी ने परिणति तक पहुँचाया है। कहानी के अंत में पागल घोषित बादशाह खान ही बिल्डिंग से बाहर नहीं निकलता है, उस घटना की दर्शक भीड़, जिसमें पाठक भी शामिल है, बादशाह खान के साथ सड़कों पर निकलती है। इसलिए यह एक यादगार कहानी है। सच को सच साबित न कर पाने की जद्दोजहद के बीच।

❐

agrawalsadhna2000@gmail.com

(जिस तरह कवियों के लिए 'हिन्दी चेतना' में 'नव अंकुर' स्तम्भ है, नए कहानीकारों के लिए रचना आभा की पहली कहानी 'दिलासों की छाँव में' के साथ हम अपना नया स्तम्भ 'नव क़दम' शुरू कर रहे हैं। -संपादक)

दिलासों की छाँव में

रचना आभा

रचना त्यागी 'आभा'

जन्मतिथि: 23 अगस्त

शिक्षा: परास्नातक (समाज शास्त्र), बी एड।

सम्प्रति: हिन्दी अध्यापिका (दिल्ली सरकार), सह-सम्पादिका 'टू मीडिया' हिंदी पत्रिका, सम्पादिका - 'आगमन' हिन्दी पत्रिका।

प्रकाशन: काव्य संग्रह 'पहली दूब' तथा समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकओं में लेख, कविताएँ व लघुकथाएँ प्रकाशित।

सम्मान: काव्य संग्रह 'पहली दूब' के लिए 'माँ सरस्वती रत्न सम्मान' (२०१३)

'विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ' द्वारा 'विद्या वाचस्पति' मानद उपाधि (२०१३)

संपर्क-aabharachna@gmail.com

'कैकेयी ! हाँ, कैकेयी हो तुम, जिसकी वजह से हमारा इकलौता बेटा हमें छोड़कर चला गया। अरे, कैकयी तो फिर भी सौतेली माँ थी, तुम तो सगी हो। क्यों किया अपनी ही औलाद के साथ ऐसा?'

रमेश चन्द्र के कहे हुए शब्द मालती देवी के दिमाग में हथौड़े सी चोट कर रहे थे। समझ पाना मुश्किल था, कि इस समय उनके मन में दु:ख अधिक था, या क्रोध। मिले-जुले भाव चेहरे पर थे, माथे पर शिकन और आँखों में आँसू। उन्हें खरी -खोटी सुनाकर रमेश तो तेज़ी से घर से बाहर निकल गये थे, पर वह निढाल, ढहती मीनार सी डायनिंग टेबल का सहारा लेकर कुर्सी पर बैठ गईं थीं। एक -एक शब्द की अनुगूँज अपने मन में बार -बार सुनती हुई, उन्हें तौलती हुई, मानो, उन्हें स्वयं को प्रताड़ित करने में आनंद आ रहा था। शायद स्वयं पर तरस खाना चाहती थी, पर आ नहीं रहा था। उन्हें थोड़ा आश्चर्य भी हुआ, 'मुझे खुद पर तरस क्यों नहीं आ रहा ? इकलौता बेटा अपनी पत्नी को लेकर अलग हो गया, कभी वापिस न आने की बात कहकर। बेटी ने भी इस बात से नाराज़ होकर बात करना बंद कर दिया। और अब पति, मेरा जीवनसाथी, जीवन की ढलती साँझ में मेरा हमसफ़र। वह भी आज इतने कटु शब्द सुना गया। मैं बिलकुल अकेली पड़ गई। कोई मुझे सुनने, समझने वाला नहीं। फिर भी मुझे अपनी इस हालत पर दया क्यों नहीं आ रही ? शायद मेरा अंतर्मन जानता है कि मैं इस दया के योग्य नहीं हूँ। कुछ भी अनजाने में नहीं हुआ, सब कुछ जानते -बूझते ही कर रही थी मैं। पर उसकी यह परिणिति नहीं सोची थी। मुझे तो बस आनंद आता था बहू पर रुआब जमाने में, उसे ताने मारने में, व्यंग्य बाणों और कुटिल मुस्कान से आहत करने में। मैं चाहती थी, वह मुझे पलटकर जवाब दे, मेरी अवज्ञा करे, मेरी ख़ुशी की अवहेलना करे, ताकि मेरे बेटे की नज़रों में गिर जाये। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। बल्कि मैं ही सबकी नज़रों में गिर गई।' वह घटनाओं का पुनरावलोकन करने लगी। पहले दिन से, जब नई नवेली बहू ऋचा का गृहप्रवेश हुआ था.....।

नई-नवेली दुल्हन ऋचा के गृहप्रवेश के कुछ घंटों बाद ही सभी मेहमान एक-एक कर अपने घर जाने लगे थे। बेटा समर थका हुआ तो था ही, पर उसके चेहरे की चमक साफ़ बता रही थी, वह विवाह में हुए लेन -देन व दोनों पक्षों के शिकवे -शिकायतों को भूलकर नई ज़िंदगी का स्वागत करने के मूड में था। बेटी पूर्वी भी इकलौती भाभी के रूप में भाई के तपते जीवन में वर्षों बाद आई ठंडक की फुहार से प्रसन्न थी। पति रमेश चन्द्र हमेशा की तरह तटस्थ थे - न बहुत प्रसन्न, न कोई शिकवा-शिकायत। बदलाव यदि किसी के जीवन में आने वाला था, तो वह थीं -मालती देवी। अपने लाड़ले पुत्र समर के प्यार-दुलार की इकलौती वारिस, जिसे समर लगभग पूजता था। उसने अपनी माँ के अभावपूर्ण और विषम वैवाहिक जीवन के

बहुत किस्से देखे और सुने थे, जिससे वह अपनी माँ के त्याग और तपस्यापूर्ण जीवन के आगे नतमस्तक हो गया था और इसीलिए उन्हें प्रसन्न रखने की हर सम्भव कोशिश करता था। शायद इसीलिए ऋचा के घर में पहला कदम रखते ही उसके साथ एक और अदृश्य कदम आया था 'असुरक्षा' का। उसके हर बढ़ते कदम के साथ मालती देवी के मन में घर करती गई असुरक्षा। अपने मज़बूत अस्तित्व के नींव के हिलने की, उनके बेटे के जीवन में एक और स्त्री के आने की, उनके बेटे के बँट जाने की, घर के हर निर्णय में एक और भागीदार के आने की। ऋचा उन्हें बहू की बजाय प्रतिद्वंद्वी प्रतीत होने लगी; जिसे हराने के लिए वह हर समय मोर्चा बाँधे तैयार रहतीं। सभी हथियारों का प्रयोग करतीं, पर मात खाने को तैयार न थीं। उन्हें ऋचा की कद -काठी, व्यवहार, पाक -कला, खर्चीलापन, सभी में दोष दीखने लगा। यह वही ऋचा थी, जिसे समर के लिए देखते समय मालती देवी बलिहारी हुई जा रहीं थीं और समर के मन से सभी संशयों को दूर कर उन्होंने ऋचा की प्रशंसा के पुल बाँध दिए थे - 'अच्छी खासी सुंदर है, एम बी ए किया हुआ है, घरेलू भी है, जैसी तू चाहता था, उतनी मॉडर्न भी है, परिवार भी पढ़ा लिखा है, और क्या चाहिए तुझे ? अब सारे गुण तो किसी में भी नहीं मिल सकते।' दोबारा ऋचा से मिलने देने की उसकी इच्छा इसी शर्त पर मानी थी, कि वह विवाह के विषय में अपना इरादा नहीं बदलेगा। आज वही बहू उन्हीं मालती देवी को कमियों और दोषों का पुलिंदा नज़र आती थी।

उधर सास के चेहरे पर मुस्कान देखने और उनके मुख से प्रशंसा के दो बोल सुनने के लिए ऋचा ने कोई कसर नहीं छोड़ी थी। समर जब भी घूमने जाने की बात करता, ऋचा हमेशा कहती - 'मम्मी पापा से भी पूछ लो। उन्हें भी ले चलेंगे।' समर ऋचा के लिए कुछ खरीदना चाहता, तो वह पहले 'मम्मी जी' के लिए लेती, फिर अपने लिए। बहुत स्वाभाविक था कि आज के युग में ऐसी पत्नी पाकर समर खुद को धन्य समझता था और माँ के आगे उसकी तारीफों के पुल भी बाँधता था। किन्तु इन बातों से मालती देवी ऋचा के प्रति सहृदय होने की बजाय और भी कर्कशा व कटु होती चलीं गईं उनका यह मानना था कि पुत्र की प्रशंसा पर केवल उन्हीं का अधिकार है और बहू

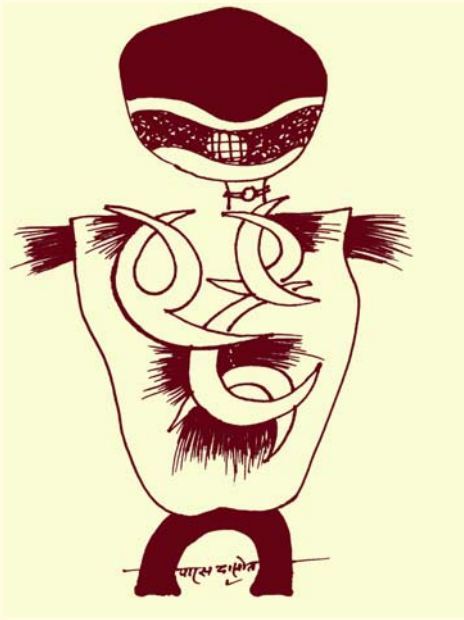

उसे अपने इशारों पर नचा रही है। समर से कहतीं - 'तू तो अंधा हो चुका है पत्नी के प्यार में। यह तेरे आगे नाटक करती है और तुझे दिखाई नहीं देता?' परिवार में सभी ने मालती देवी को समझाने की भरसक कोशिश की, पर स्थिति तब और बिगड़ती जाती, जब मालती देवी रो-रोकर सब पर उन्हें न समझने का, और बहू की 'चाल' का शिकार होने का आरोप लगातीं। फलत: दु:खी और असहाय समर का आक्रोश ऋचा पर निकलने लगा। उनके बीच अकारण दरार पड़ने लगी। आए दिन घर में कलह होने लगी। यह एक विचित्र बात थी, कलह के बाद मालती देवी के अलावा घर में सभी दु:खी और हताश दिखते थे; एक वही थीं, जिनके चेहरे पर संतोष होता था। विपरीत परिस्थितियों में, जब घर में सब संतुष्ट व प्रसन्नचित्त रहते थे, मालती देवी की शिकायतें पूरी होने में ही नहीं आती थीं। समर पत्नी के सामने माँ की निंदा नहीं करना चाहता था, इसलिए सहनशक्ति समाप्त होने पर यदा-कदा अपनी मित्र समान बड़ी बहन पूर्वी से बात करके मन हल्का कर लेता था और रो भी लेता था। तब वह भी अपने प्यारे भाई की बेचारगी पर पसीज उठती, और उसे ढाढस बँधाती। फ़ोन करके माँ को भी समझाने की कोशिश करती - 'माँ ! यह तुम ठीक नहीं कर रही हो। भूल रही हो कि वह इस परिवार में नई है, यदि हम उसे अभी प्यार से नहीं रखेंगे, तो वह हमें कभी अपना नहीं पायेगी, और न हमारी इज़्ज़त कर पायेगी। समर की तो सोचो, वह कितना परेशान रहता है।' मालती देवी उसे ही चुप करा देतीं - 'मैं तो इन्हें कुछ नहीं कहती। अपनी ज़िंदगी अपनी मर्ज़ी से जी रहे हैं, और क्या चाहिए इस महारानी को ?' और यह कहकर फ़ोन काट देतीं।

अब पानी सर से ऊपर होने लगा था। सारा दिन ऑफिस की भाग-दौड़ के बाद घर के इस तनाव के कारण समर का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा था। कोई दिन शांति से नहीं व्यतीत होता था। अति तो तब हो गई, जब मालती देवी अपना पलड़ा भारी करने के लिए झूठ का सहारा लेने से भी नहीं हिचकिचाईं। वह पूर्वी को ऋचा का सबसे बड़ा समर्थक मानती थीं। उन्होंने अपनी बेटी पूर्वी को 'अपनी ओर' मिलाने और ऋचा को पूर्वी की नज़रों में गिराने के लिए ऐसा झूठ बोला, जिसे सुनकर पूर्वी के दिल को बहुत ठेस पहुँची। उसे ऋचा पर क्रोध भी आया- 'एक मैं हूँ, जो हर समय इसकी तरफदारी में लगी रहती हूँ, अपनी माँ के भी विरुद्ध जाकर, उन्हें नाराज़ करके; और एक यह महारानी है कि मेरे ही खिलाफ़ बोलती है।' फिर भी वह अपने भाई को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहती थी, इसलिए चुप रही। कुछ दिन बाद जब समर का फ़ोन आया और उसने फिर से माँ की शिकायत करते हुए ऋचा की तरफदारी की। पूर्वी से चुप न रहा गया। उसने क्रोध में ऋचा की शिकायत करते हुए उसके बारे में बुरा -भला कह डाला। यह सुनकर समर अवाक् रह गया। वह भली -भाँति जानता था कि उसकी बहन ही ऋचा की खुशियों का सबसे अधिक ध्यान रखती थी, उसी के विषय में ऋचा ने अपशब्द कहे। वह यह भी जानता था कि पूर्वी उस से कभी झूठ नहीं बोलेगी, बल्कि वह तो हर सम्भव कोशिश करती थी समर और ऋचा को तनाव मुक्त रखने की।

घर पहुँचते ही समर ने क्रुद्ध स्वर में ऋचा को पुकारा। ऋचा पानी का गिलास लेकर आई, समर ने गिलास फेंक कर धरती पर मारा। ऋचा हतप्रभ रह गई। समर का यह रूप उसने पहली बार देखा था। वह कड़कते स्वर में बोला- 'क्या कहा तुमने दीदी के बारे में? वह हमारे घर में दखल देती है? तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई यह झूठ बोलने की? अरे इतनी तो शर्म की होती, एक वही है इस घर में, जो तुम्हें तुम्हारा अधिकार दिलाने के लिए अपनी माँ तक से लड़ जाती है। और तुमने उसे भी नहीं बख्शा.....।' चिल्लाते हुए उसने ऋचा पर हाथ

उठा दिया।

अगली सुबह पूर्वी के पास फ़ोन आया। बुरी तरह सुबकते हुए किसी तरह कंठ में फँसे शब्दों को निकालते हुए ऋचा बोल रही थी- 'दीदी, आपने ऐसा सोच भी कैसे लिया कि मैं आपके खिलाफ़ कुछ बोल सकती हूँ ? मैं तो इस परिवार में आपको ही अपना मानकर सुख -दु:ख बाँटती हूँ। अपने मायके में भी आप ही का गुणगान करती नहीं थकती। आपकी हर बात को सर माथे पर रखती हूँ। और आपने इतना बड़ा झूठ ..... क्यों दीदी ?' कहकर बुरी तरह फफकने लगी ऋचा। पूर्वी को जैसे साँप सूँघ गया। उसे समझते देर न लगी। माँ ने उससे झूठ कहा था। वह सोचने लगी .....माँ की असुरक्षा और ऋचा को नीचा दिखाने का उनका पागलपन इस हद तक बढ़ चुका है। जीवन भर अपने बच्चों को जिस सच्चाई का वह पाठ पढ़ाती रहीं, आज स्वयं ही उस पाठ को ताक पर रख दिया है। एक तुच्छ से प्रयोजन के कारण। उसे ग्लानि भी हो रही थी। बिना सोचे समझे माँ की बात का विश्वास करने पर। पर कभी सोचा भी तो नहीं था, अपने अहम् से वे इस कदर विवश हो जाएँगी और यह रास्ता अपनाने से पीछे नहीं हटेंगी। खैर ! बात खुली और सबके सामने आई। सभी दु:खी और हैरान -परेशान थे। इस समस्या का हल निकाले नहीं निकल रहा था। गुत्थी जितनी सुलझाते, उतनी और उलझती जाती थी। ऐसे में समर को एक ही रास्ता दिखा, जिस पर वह कभी नहीं चलना चाहता था।

उसने घोषणा की - 'मैं ऋचा को लेकर अलग हो रहा हूँ। और सहन नहीं होता मुझसे। मैंने एक अच्छा पुत्र बनने की पूरी कोशिश की, और अपनी पत्नी को भी एक अच्छी बहू के सभी धर्म निभाते पाया, लेकिन फिर भी हम माँ को खुश रखने में असफल रहे हैं। मुझे डॉक्टर ने साफ़- साफ़ कह दिया है कि यह तनाव मेरे लिए बहुत घातक सिद्ध हो सकता है। अत: अब मैं इस तनाव से दूर जाना चाहता हूँ और आपको भी तनावमुक्त रखना चाहता हूँ। कोशिश रहेगी इस घर में वापिस कदम न रखूँ। आपको कभी भविष्य में हमारे प्रेम का एहसास हो और हमारे साथ ख़ुशी- ख़ुशी रहने की इच्छा हो, तो आपका स्वागत है।' इसके ठीक तीसरे दिन समर और ऋचा माँ-पापा के पैर छूकर अपना सामान लेकर चले गये।

मालती देवी वर्तमान में लौट आईं अब तक उनके काफी आँसू बह चुके थे। अपने कलेजे के टुकड़े को कौन अलग होता देख सकता है? उसके द्वार उनके लिए खुले थे। किन्तु उनका हठ और अभिमान अभी भी उन्हें वहाँ जाने से रोक रहा था।

'क्या हुआ, अगर चला गया तो? जिनके बच्चे विदेश चले जाते हैं, वे भी तो अकेले रहते ही हैं। कोई मुझे कैकेयी कहता है, तो कहता रहे। किसी के कहने से हो थोड़ी जाऊँगी। यह तो पुस्तकों में भी लिखा है, 'पूत कपूत हो सकता है, पर माता कभी कुमाता नहीं हो सकती' मैं भी नहीं हूँ।' कहकर स्वयं को दिलासा देने की कोशिश करने लगीं।

SAI SEWA CANADA

(A Registered Canadian Charity)

Address: 2750, 14th Avenue, Suite 201, Markham, ON, L3R 0B6
Phone: (905) 944-0370 Fax: (905) 944-0372
Charity number: 81980 4857 RR0001

Helping to Uplift Economically and Socially Deprived Illiterate Masses of India

Thank you for your kind donation to SAI SEWA CANADA. Your generous contribution will help the needy and the oppressed to win the battle against lack of education and shelter, disease, ignorance and despair.

Your official receipt for Income Tax purposes is enclosed.

Thank you, once again, for supporting this noble cause and for your anticipated continuous support.

Sincerely yours,

Narinder Lal • 416-391-4545

Service to humanity

कमला बाई

ललित शर्मा

ललित शर्मा

प्रकाशित कृतियाँ: सिरपुर सैलानी की नज़र से (यात्रा वृत्तांत) बेस्ट सेलर, साझा काव्य संग्रह -टूटते सितारों की उड़ान, अरुणिमा।

28 वर्षों से काव्य, कहानी, व्यंग्य, रिपोर्ताज, साहित्य, संस्कृति, पुरातत्व, यात्रा वृत्तांत आदि विषयों पर लेखन। 5 वर्षों से निरंतर अंतरजाल पर उपस्थित।

साक्षात्कार, अमृत संदेश, अमर उजाला, दैनिक पत्रिका, दैनिक जागरण, हिन्दुस्तान, दैनिक भास्कर, नवभारत, देशबंधु, नई दुनिया, जनवाणी, गजरौला टाईम्स, हाईवे चैनल, दैनिक छत्तीसगढ, क्रांतिरथ, सद्भावना दर्पण, बुलंद छत्तीसगढ, भारत वाणी, जन मन, पंचायत की हलचल, निडर आँखे, इतवारी अखबार, भारत वाणी, हरिभूमि, मिसाल (फ़िल्मी पत्रिका) छत्तीसगढ़ का आईना, बिहिनिया संझा, दृष्टिपात, स्वर्ण आभा, मितान भूमि, भास्कर भूमि, पंचायत की हलचल, सर्जक इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं एवं ललित डॉट कॉम, ब्लॉग4वार्ता, शिल्पकार के मुख से, एक सैलानी की कलम से, चलती का नाम गाड़ी, इत्यादि अनेक ब्लॉग्स पर निरंतर लेखन एवं प्रकाशन।

संपर्क

shilpkarr@gmail.com

नागपुर से ट्रेन में सवार हुआ, आरक्षण था नहीं, इसलिए रायपुर तक का जनरल बोगी का ही सफ़र लिखा था। फिर अधिक दूरी भी नहीं है, सिर्फ ५ घंटे का सफ़र यूँ ही कट जाता है। बड़ी मशक्कत के बाद बोगी में घुस सका, शर्मा जी ने बालकनी (सामान रखने की सीट) में सीट देख ली थी, चलने की जगह पर भी लोगों का सामान रखा हुआ था। मैं बड़ी जद्दोजहद के बाद बालकनी तक पहुँचा। नीचे की सीटों पर छत्तीसगढ़ से कमाने-खाने राज्य से बाहर गए लौटने वाले परिवार बैठे थे। लम्बी सी एक महिला पहुँची, नीचे सीट न देखकर वह भी बालकनी में चढ़ने का प्रयास करने लगी, लेकिन सफल नहीं हो सकी। सहायता के लिए मेरी ओर देखा तो मैंने उनका हाथ थाम कर चढ़ाने का प्रयास किया, लेकिन सफलता नहीं मिली। फिर वह सामने की तरफ से सीट पर पैर रख कर बालकनी तक पहुँचने में कामयाब हो गई। अब सभी सवारियाँ बोगी में ठँस चुकी थी। ट्रेन चलने में एक घंटा और था।

गाड़ी चल पड़ी, अगले स्टेशन पर मेरे बगल की सीट खाली हुई। नीचे बैठी एक मोटी सी अधेड़ महिला उस पर चढ़ गई। उसे ऊपर चढ़ने के लिए किसी भी सहायता की ज़रूरत नहीं पड़ी। हाथों में सोने की मोटी-मोटी चूड़ियाँ पहन रखी थी, गले में सोने की चैन और कान में सोने के बुंदे भी। रंग धूप में पका हुआ था, चेहरे पर जीवन से संघर्ष चिह्न स्पष्ट दिख रहे थे। वह कोई छुई-मुई नहीं, मेहनतकश महिला लग रही थी। प्रदेश के लोग मिलने पर अपनी छत्तीसगढ़ी बोली में बात करने का लोभ मैं नहीं छोड़ पाता। छत्तीसगढ़िया मिला और बात शुरू हो जाती है। महिला ऊपर की सीट पर बैठ कर अपने साथियों के साथ छत्तीसगढ़ी में बात करने लगी। इससे जाहिर हुआ कि सब जम्मू से आ रहे हैं। मैंने सोचा, महिला इतनी मोटी है कि वह मज़दूरी नहीं कर सकती, अपने बेटे बहुओं के बच्चों की रखवारी करने साथ गई होगी।

मेरा ऐसा सोचना सही नहीं था। उससे पूछ बैठा कि वह जम्मू में क्या काम करती है? मेरा पूछना ही था बस वह शुरू हो गई, उसने अपने जीवन की कथा ही खोल कर रख दी। मैं मन्त्र मुग्ध उसे सुनता रहा। 'मैं जम्मू में अपना धंधा करती हूँ, देह भारी हो गई और उम्र भी बढ़ गई इसलिए शारीरिक काम नहीं होते। महीने में १५ दिन जम्मू के पास बड़ी बम्नहा में रहती हूँ, वहाँ बहुत सारे छत्तीसगढ़िया रहते हैं, उनको कपड़े, सुकसी (सुखाई हुई मछली), गुड़ाखू, बाहरी, सूपा और भी बहुत सारे सामान ले जाकर बेचती हूँ, इससे ही मेरा गुजर बसर चलता है। बच्चों को पालने के लिए कुछ तो करना पड़ता है बाबू साहब। आप क्या करते हैं?' उसने अपनी बात कहते हुए सवाल दाग दिया। मैंने बताया कि घुमक्कड़ हूँ और घुमक्कड़ी पर लिखता हूँ। वह समझ गई 'पेपर लिखैया' है।

'बाबू, मैंने भी सरपंची का चुनाव अपने गाँव सरसींवा से लड़ा है। फेर लोगों ने हरवा दिया। ढाई लाख खर्च हो गया। सब सगा लोग खा पी गए, राँड़ी दुखाही का खाने से कौन सा उनका भला होने वाला है? २२ बरस पहले मेरे धनी की मौत हो गई। मेरे पाँचों लड़के छोटे थे। धनी के रहते कभी बाजार नहीं गयी थी सब्जी लेने भी। मुझे बहुत चाहते थे, सिर्फ घर का ही काम करती थी। उनकी किडनी ख़राब हो गई तो रायपुर के समता कालोनी के बड़े डाक्टर से उनका इलाज करवाया, सब गहना गुंथा बिक गया, लेकिन उन्हें बचा नहीं पाई। बच्चों को पढ़ाना बहुत जरूरी था, इसलिए नए सिरे से जिन्दगी शुरू की। मैंने पहला धंधा दारू बेचने का शुरू किया। उलिस-पुलिस थाना कभी देखा नहीं था।

दारू के धंधे में अच्छी कमाई थी।

थाने वालों ने ६ बार छापा मार कर अपराध दर्ज किया, कोर्ट में पेशी में जाती थी। सब में बाइज़्ज़त बरी हो गई। बस वकील लोगों को डट के पैसा देना पड़ा। बड़े लड़के ने एम ए किया, उससे छोटे ने बी ए। नौकरी नहीं लगी तो ड्राइवर बन गए। उससे छोटा लड़का पखांजूर से आई टी आई किया है और एक फैक्टरी में नौकरी कर रहा है। ५ बेटा और ३ बहु और ७ पोते -पोती हैं। पक्का घर और ६ दुकान बना दी हूँ, एक बेटे का व्यवहार ठीक नहीं इसलिए उसे अलग कर दिया। वह अलग रहता है, उसका महीने का राशन भेज देती हूँ, बहू को कह दिया है कि किसी चीज की कमी हो तो लिस्ट बना कर भेज दिया करे। मैं रिक्शे में राशन भरवा कर भेज देती हूँ। रानी कुंती ने ५ बेटों के लिए एक बेटे कर्ण को त्याग दिया था, मैंने भी ४ बेटों के लिए एक बेटे को त्याग दिया। उसे अलग कर दिया। मेरी सम्पत्ति का बँटवारा उसे मेरे मरने पर मिलेगा, ऐसा फौती चढ़वाई तब पटवारी को लिखवा दी थी।'

उसकी कहानी शुरू थी और मैं सुन रहा था। गाड़ी अपनी रफ़्तार से स्टेशन पर सवारियाँ उतारते-चढ़ाते चल रही थी। मेरी सफ़र की साथिन के जीवन के उतार-चढ़ाव भी कुछ इसी तरह जारी थे। उसने कथा जारी रखी। एक दिन थानेदार ने छापा मारा और कहा - कमला बाई अब दारू का धंधा बंद कर दो। तो मैंने कहा कि साहब अपने घर में झाड़ू बर्तन का काम दे दो। जिससे मैं अपने बच्चों को पाल सकूँ थानेदार साहब चुप हो गए। दारू का धंधा चालू रहा। दिन भर आडर लिखती थी और रात को १२ बजे के बाद हाथ में लोहे की राड लेकर घर से चुपके से निकलती, गाँव से ३ किलो मीटर दारू की गाड़ी बुलवाती और रात भर में आडर का माल सप्लाई करके सुबह ४ बजे घर आकर चुपचाप सो जाती। दारु का धंधा जरूर किया पर कभी भी दारु का एक छींटा मुँह में नहीं लिया। बच्चे बड़े होने लगे तो मैंने दारू का धंधा खुद ही छोड़ दिया। कमाई तो बहुत थी लेकिन ऐसा धंधा भी किस काम का जिससे बच्चे बिगड़ जाएँ।

गाँव के आस पास से काफी लोग जम्मू कमाने-खाने जाते हैं, मैंने सोचा कि उनके लिए छत्तीसगढ़ में प्रयोग होने वाली जरूरत की चीजें वहाँ ले जाकर बेचूँ तो अच्छी कमाई हो सकती है। तब से मैंने यह धंधा शुरू कर दिया। यहाँ से जम्मू तक सामान ले जाने में समस्या बहुत आती है, लगेज में बुक करके ले जाने में बहुत खर्च होता है। सारी कमाई लगेज में ही खप जाती है। इसलिए सब सामान जनरल बोगी में ही भर देती हूँ, एक तरफ की लैट्रिन में सामान भर कर दरवाजा लगा देती हूँ और एक सीट पकड़ कर बैठ जाती हूँ। पुलिस वाले सब पटे हुए हैं, कोई १० तो कोई २०, ज्यादा से ज्यादा ५० रूपये देती हूँ। लेकिन कई बहुत मादर....... होते हैं। तो उनसे उसी तरह निपटती हूँ, जस को तस। एक बार टी टी ने बहुत परेशान किया। पुलिस बुला लिया। जेल भेजूँगा कहने लगा, तो मैंने उसे समझाया कि जेल से बहर आऊँगी तो धंधा यही करुँगी। तेरे से भी निपट लूँगी। अकेली औरत देख कर धमकाता है क्या बे? मेरा भी नाम कमला बाई है। तेरे जैसे पता नहीं कितने देखे। हर महीने आती हूँ बीसों साल से तेरे को जो उखाड़ना है उखाड़ ले। मैं किसी से नहीं डरती, कोई चोरी-चकारी करुँगी तो डरूँगी। बाकायदा टिकिट लेकर गाड़ी में चढ़ती हूँ। फिर वह टीटी २०० में मान गया। पेट की खातिर सब करना पड़ता है।

उसने ब्लाउज़ से बटुवा निकाला, उसमें मतदाता पहचान पत्र और पैन कार्ड था। ये सब मैंने बनवा रखा है, भले ही पहली दूसरी क्लास पढ़ी हूँ पर हिसाब-किताब सब जानती हूँ, जो भी सामान उधारी में बेचती हूँ उसे डायरी में लिखती हूँ, महीने ५ तारीख तक जम्मू जाती हूँ सामान लेकर और २० तारीख तक सामान बेच कर उधारी वसूल कर घर आ जाती हूँ। अभी जम्मू में मेरी २-३ लाख की उधारी बगरी है। वहाँ काम करने वालों को ७ से १५ तारीख तक तनखा है। उस समय मेरा वहाँ रहना जरुरी रहता है वर्ना उधारी डूब जाएगी। घर में ए टी एम है, वहाँ से बैंक में पैसा जमा करवा देती हूँ और यहाँ निकाल लेती हूँ। जम्मू में एक झोपड़ी बना रखी है, जिसमें टी वी कूलर सब है। खाना बनाने के सारे सामान की वेवस्था है। कभी आप जम्मू आओगे तो अपने हाथ से बना कर खिलाऊँगी। मुझे उसके बटुए में दवाई दिखाई दी, तो उसने बताया कि बी पी की गोली है। बच्चेदानी का आपरेशन करवाया तब से खा रही है। बीपी की गोली के साथ नींद की गोली भी थी। कहने लगी इसे दिन में खाती हूँ तब अच्छा लगता है। अब आदत हो गई है।

जम्मू में सब लोग पहचानते हैं, किसी छत्तीसगढ़िया कोई समस्या होती है तो उसका निदान भी करती हूँ, उन्हें अस्पताल ले जाती हूँ, उधारी पैसा कौड़ी भी देती हूँ, किसी का रुपया पैसा घर भेजना रहता है तो अपने एकाउंट से भेज देती हूँ। गाँव में मेरा बेटा एटीएम से रुपया निकाल कर सम्बंधित के घर पहुँचा देता है। मेरे से जितना बन पड़ता है उतना भला कर देती हूँ। अब कुछ लोग कह रहे थे कि जम्मू आने के लिए भी लायसेंस लेना पड़ेगा। ऐसा होगा तो बहुत गलत हो जायेगा। इस बात पर कई लोगों से मेरा झगड़ा भी हो गया। जम्मू से चलते हुए सेब लेकर आई हूँ, नाती पोते लोग इंतजार करते रहते हैं, दाई आएगी तो खई खजानी लाएगी अभी घर जाऊँगी तो मेरे लिए नाती पोते पानी लेकर आएँगे, खाट पर पड़ते ही मेरे ऊपर चढ़ कर खूँदना शुरू कर देगें। देह का सारा दर्द मिट जायेगा। फिर नहा कर अपने आस पड़ोस में बच्चों को सेब दूँगी। नाती पोतों के संगवारी भी मेरे आने का इंतजार करते हैं।''

गाड़ी दुर्ग स्टेशन पहुँच चुकी थी। कमला बाई की कहानी ख़त्म होने का ही नाम नहीं ले रही थी। उसके पैन कार्ड में यही नाम लिखा था 'कमला बाई', फिर वह कहती है - मेरा बेटा रायपुर आया है, पुलिस में भरती होने। आज उसका नाप जोख है। वह कहता है कि पुलिस की ही नौकरी करेगा। कोई उसे पुलिस की नौकरी लगा दे तो ४ लाख भी खर्च करने को तैयार हूँ, एक बार अपने सगा थानेदार को ३ लाख रुपया दी थी, पर वह नौकरी नहीं लगा सका। ५ हजार रुपया काट कर बाकी वापस कर दिए। ५ बेटा हे महाराज, नोनी के अगोरा मा ५ ठीक बेटा होगे। अब एक गरीब की लड़की को पाल पोस रही हूँ, वही मेरी बेटी है। उसकी शादी करुँगी। जब तक जाँगर चल रही है। जम्मू की यात्रा चलते रहेगी। मेरा गंतव्य समीप आ रहा था, कमला बाई का साथ छूटने का समय था। उससे मोबाईल नंबर लिया और अपना कार्ड दिया। कमला बाई के जीवन संघर्ष की गाथा सुनते हुए रायपुर कब पहुँच गया, पता ही नहीं चला। गाड़ी से उतरते हुए कमला बाई की जीवटता को सैल्यूट किया और कभी जम्मू में मिलने का वादा करके बढ़ लिया।

स्त्रियों के हिस्से में

डॉ. जेन्नी शबनम

सोचते-सोचते जैसे दिमाग शून्य हो जाता है। सदमे में मन ही नहीं आत्मा भी है। मन में मानो सन्नाटा गूँज रहा है। कमज़ोर और असहाय होने की अनुभूति हर वक़्त डराती है और नाकाम होने का क्षोभ टीस देता है। हताशा से जीवन जीने की शक्ति ख़त्म हो रही है। आत्मबल तो मिट ही चुका है आत्मा रक्षा की कोई गुंजाइश भी नहीं बची है। सारे सपने तितर-बितर होकर किसी अनहोनी की आहट को सोच घबराए फिरते हैं। मन में आता है चीख-चीख कर कहूँ - 'ऐसी खौफ़नाक दुनिया में पल-पल मरकर जीने से बेहतर है, ऐ आधी दुनिया, एक साथ खुदकुशी कर लो।'

हर दिन बलात्कार की बर्बर घटनाओं को सुन कर १३ वर्षीय लड़की कहती है - 'माँ, चलो किसी और देश में रहने चले जाते हैं। वहाँ कम से कम इतना तो नहीं होगा।' माँ खामोश है। कोई जवाब नहीं; ढांढस और हौसला बढ़ाते कोई शब्द नहीं, बेटी को बेफिक्र हो जाने के लिए झूठी तसल्ली के कोई बोल नहीं। माँ की आँखें भीग जाती है। एक सम्पूर्ण औरत बन चुकी वह माँ जानती है कि वह खुद ही सुरक्षित नहीं तो बेटी को क्या कहे, उसके डर को कैसे दूर करे, किस देश में ले जाए; जहाँ पर उसकी बेटी पूर्णत: सुरक्षित हो। आज कम से कम इस दुनिया में तो ऐसी कोई भी जगह नहीं है।

बेटी से माँ कहती है -'खुद ही सँभल कर रहो, बदन को अच्छे से ढँक कर रहो, शाम के बाद घर से बाहर नहीं जाना, दिन में भी अकेले नहीं जाना, कुछ थोड़ा बहुत गलत हो भी जाए तो चुप हो जाना वरना उससे भी बड़ा खामियाज़ा भुगतना पड़ेगा, किसी भी पुरुष पर विश्वास नहीं करना चाहे कितना भी अपना हो।'

लड़की बड़ी हो चुकी है। सवाल उगते हैं - आखिर ८० साल की औरत के साथ बलात्कार क्यों ? जन्मजात लड़की के साथ क्यों ? ५ साल की लड़की के साथ क्यों ? ६ साल.....७ साल... किसी भी उम्र की स्त्री के साथ .....क्यों ?... क्यों ? ...क्यों ?

कहाँ जाए कोई भागकर? किस-किस से खुद को बचाए? खुद को कैदखाने में बंद भी कर ले तो कैदखाने के पहरेदारों से कैसे बचे? हर कोई इन सभी से थक चुका है, चाहे वो स्त्री हो या कोई नैतिक पुरुष। सभी पुरुषों की माँ बहन बेटी है, और हर कोई सशंकित और डरा-सहमा हुआ रहता है। दुनिया का ऐसा एक भी कोना नहीं; जहाँ स्त्रियाँ पूर्णत: सुरक्षित हों और बेशर्त सम्मान और प्यार पाएँ।

हम सभी हर सुबह किसी दर्दनाक घटना के साक्षी बनते हैं और हर शाम खुद को साबुत पा कर ईश्वर का शुक्रिया अदा करते हैं। हर कोई खुद के बच जाने पर पल भर को राहत महसूस करता है लेकिन दूसरे ही पल फिर से सहम जाता है कि कहीं अब अगली बार उसकी बारी तो नहीं। खौफ़ के साए में ज़िंदगी जी नहीं जाती बस किसी तरह बसर भर होती है; चाहे वो किसी की भी ज़िन्दगी हो।

सारे सवाल बेमानी। जवाब बेमानी। सांत्वना के शब्द बेमानी। हर रिश्ते बेमानी। शिक्षा, धर्म, गुरु, कानून, पुलिस, परिवार सभी नाकाम। जैसे शाश्वत सत्य है कि स्त्री का बदन उसका अभिशाप है; वैसे ही शाश्वत सत्य है कि पुरुष की मानसिकता बदल नहीं सकती है। कामुक प्रवृति न रिश्ता देखती है न उम्र न जात-पात न धर्म न शिक्षा न प्रांत। स्त्री देह और उस देह के साथ अपनी क्षमता भर हिंसक क्रूरता; ऐसे दरिंदों की यही आत्मिक राक्षसी भूख है। ऐसे मनुष्य को पशु कहना भी अपमान है क्योंकि कोई भी पशु सिर्फ शारीरिक भूख मिटाने या वासना के वशीभूत ऐसा नहीं करता।

पशुओं के लिए यह जैविक क्रिया है जो ख़ास समय में ही होता है। मनुष्यों की तरह कामुकता उनका स्वभाव नहीं और न ही अपनी जाति से अलग वे रति क्रिया करते हैं। मनुष्य के वहशीपना को रोग की संज्ञा देकर उसका इलाज करना मुनासिब नहीं है। क्योंकि ऐसे लोग कभी भी सुधरते नहीं है अत: वे क्षमा व दया के पात्र नहीं हो सकते। क़ानून और पुलिस तो यूँ भी ऐसों के लिए मज़ाक की ही तरह है। अपराधी अगर पहुँच वाला है तो फिक्र ही क्या, और अगर निर्धन है तो जेल की रोटी खाने में बुराई ही क्या।

निश्चित ही मीडिया की चौकसी ने इन दिनों बलात्कार की घटनाओं को दब जाने से रोका है,

परन्तु कई बार मीडिया के कारण भी ऐसे हादसे दबा दिए जाते हैं और बड़े-बड़े अपराधी खुले आम घूमते हैं। सरकार, सरकारी तंत्र, मीडिया और क़ानून के पास ऐसी शक्ति है कि अगर चाहे तो एक दिन के अन्दर तमाम अपराधों पर काबू पा ले। लेकिन सभी के अपने-अपने हिसाब अपने-अपने उसूल। जनता असंतुष्ट और डरी रहे तभी तो उन पर शासन भी संभव है। बलात्कार जैसे घृणित अपराध का भी राजनीतिकरण हो जाता है। सभी विपक्षी राजनैतिक पार्टियों को जैसे सरकार को कटघरे में लाने का एक और मौक़ा मिल जाता है।सत्ता परिवर्तन, तात्कालीन प्रधानमन्त्री या गृहमंत्री के इस्तीफ़े से क्या ऐसे अपराध और अपराधियों पर अंकुश संभव है? हम किसी ख़ास पार्टी पर आरोप लगा कर अपने अपराधों से मुक्त नहीं हो सकते।

प्रशासन, पुलिस, कानून हमारी सुरक्षा के लिए है लेकिन अपराधी भी तो हममे से ही कोई न कोई है; हम इस बात से इंकार नहीं कर सकते। अपराध भी हम करते हैं और उससे बचने के लिए भ्रष्टाचार को बढ़ावा भी हम ही देते हैं। हम ही सरकार बनाते हैं और हम ही सरकार पर आरोप लगाते हैं। हम ही कानून बनाते हैं और हम ही कानून तोड़ते हैं। हम में से ही कोई किसी की माँ बहन बेटी के साथ बलात्कार करता है और अपनी माँ बहन बेटी की हिफाज़त में जान भी गँवा देता है। आखिर कौन है ये अपराधी? जिसकी न कोई जाति है न धर्म। इसके पास इस अपराध को करने का कोई औपचारिक प्रशिक्षण भी नहीं होता और निश्चित ही इनके घरवाले ऐसे अपराध करने पर शाबासी नहीं देते हैं। क़ानून और पुलिस की धीमी गति और निष्क्रियता, क़ानून का डर न होना और सज़ा का कम होना ऐसे अहम् कारण हैं; जो ऐसे अपराध को रोक नहीं पाते हैं।

कुछ अपराध ऐसे होते हैं जिनकी सज़ा कभी भी मृत्यु से कम हो ही नहीं सकती तथा 'जैसे को तैसा' का भी दंड नहीं दिया जा सकता; बलात्कार ऐसा ही अपराध है। इस जुर्म की सरल सज़ा और मृत्यु से कम सज़ा देना अपने आप में गुनाह है। ऐसे अपराधी किसी भी तबके के हों, आरोप साबित होते ही बीच चौराहे पर फाँसी दे दी जानी चाहिए। कोई दूसरे ऐसी मनोवृत्ति वाले अपराधी कम से कम डर के कारण तो ऐसा न करेंगे। न्यायप्रणाली और पुलिस को संवेदनशील, निष्पक्ष और जागरूक तो होना ही होगा। अन्यथा ऐसे अपराध कभी न रुकेंगे।

❐

लेखकों से अनुरोध

बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनीकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फाइल अथवा वर्ड की फाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ई मेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। चित्र की गुणवत्ता अच्छी हो तथा चित्र को अपने नाम से भेजें। पुस्तक समीक्षा के साथ पुस्तक के आवरण का चित्र, रचनाकार तथा अपना चित्र अवश्य भेजें। साथ ही प्रकाशक, मूल्य एवं प्रकाशन वर्ष आदि जानकारी भी लिख कर भेजें। **-सम्पादक**

सूचना

नव वर्ष 2014 के साथ ही हिन्दी चेतना पत्रिका(दिसम्बर-जनवरी अंक), कैनेडा के साथ-साथ भारत से भी प्रकाशित होगी। पत्रिका के सदस्य बनना चाहते हैं या पत्रिका के एक-दो अंक पढ़ने के लिए मँगवाना चाहते हैं तो आप संपर्क कर सकते हैं-

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' 9013800290
पंकज सुबीर 9977855399

भारत में वैष्णव नाट्य परंपरा की सामाजिक भूमिका

कुमार गौरव मिश्रा

कुमार गौरव मिश्रा
शोधार्थी, नाट्यकला एवं फिल्म अध्ययन
विभाग महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी
विश्वविद्यालय, वर्धा- ४४२००५, महाराष्ट्र।
kumar.mishra00@gmail.com

वैष्णव भक्तिधारा में भगवान की लीलाओं का नाटकीय प्रस्तुतीकरण मनोरंजन की वस्तु नहीं, आध्यात्मिक उन्नयन की युक्ति बन गई और उसे वह उच्च भावभूमि मिली जिसके कारण उसे भारतीय जनमानस में अनोखा सम्मान और लोकप्रियता प्राप्त हो सकी। वैष्णव भक्ति के प्रभाव स्वरूप अनेक मंदिरों का निर्माण हुआ उनके बड़े बड़े प्रांगणों में नाट्यप्रदर्शन सरलता से हो सकता था। मंदिरों के पास पर्याप्त धन सम्पदा थी, कीर्तनिए और कथागायक थे। दक्षिण और उड़ीसा के मंदिरों में नृत्य प्रस्तुत करने के लिए देवदासियाँ राखी जाती थी, भगवान की मंगल आरती के साथ गायन वादन आवश्यक था ही : इस प्रकार मंदिर संगीत, नृत्य और नाट्य प्रदर्शन तीनों के ही केंद्र बन गए वैष्णव भक्ति आंदोलन का व्यापक प्रभाव पूर्वोत्तर भारत में भी पड़ा। असम से लेकर मणिपुर और त्रिपुरा की घाटियों में वैष्णव भक्ति की चेतन छाया में कई नाट्य रूपों का प्रादुर्भाव हुआ। इन नाट्य रूपों में सिक्किम का बालन,असम का अंकिया, भाओना / भावना,त्रिपुरा का ढब जात्रा तथा मणिपुर की गोड़लीला आदि प्रमुख है।

पूर्वोत्तर भारत के भक्ति संतों कृष्ण को अपना नायक बनाया। रंगमंच पर राम की उपस्थिती कृष्ण की अपेक्षा कम रही। सिक्किम के बालन तथा आसाम के अंकिया नाट में राम और कृष्ण दोनों के जीवन से जुड़ी लीलाओं को प्रस्तुत किया जाता है, जबकी गोड़लीला और ढब जात्रा के केंद्र में सिर्फ कृष्ण है।

उत्तर से दक्षिण और पूर्व पश्चिम तक इस समय जो लोक नाट्य शैली से प्रचलित है। उन सबका उदयकाल १५वीं -१६वीं शताब्दी माना जाता है। परंतु इन सबकी प्रेरणा का स्रोत हमारे विचार से महाकवि जयदेव का गीतगोविंद ही है। जिसकी रचना १२वीं शताब्दी में हुई। इस लीला काव्य की लोकप्रियता उस युग में इतनी अधिक थी की यह ग्रंथ स्वयं श्रीकृष्ण की रासलीला प्रदर्शन का मुख्य माध्यम बन गया। देश के विभिन्न भागों में उस युग में गीत-गोविंद के नाट्य प्रदर्शन होते थे। पूरी के मंदिर में आज भी गीत गोविंद के प्रदर्शन की परंपरा है और वहाँ आज भी वेतनभोगी प्रदर्शनकारी मंदिर में गीतगोविंद का प्रदर्शन करते है। गीतगोविंद के यह प्रदर्शन उस समय पूरे देश में होते थे।

इस संबंध में जगदीश चंद्र माथुर का कथन है की जयदेव ने न सिर्फ दृश्य प्रबंध का विकास किया, वरन एक नूतन संवाद पद्धति को भी प्रचलित किया। इसमें संलाप प्रधान होते थे। इस पद्धति में सूत्रधार द्वारा मंगलाचार तथा सूचना उसके बाद अन्य पात्रों द्वार ध्रुवपद सहित संलाप। इसमे यह सुविधा थी की जब सूत्रधार स्तुति और सूचना बोधक श्लोकों को बोलता था। तब आगे आने वाला पात्र संलाप के लिए तैयार सकता था। इस अवकाश की जरूरत इसलिए भी थी की हर कथन, गीत तथा संलाप को गायन एवं नृत्य के साथ प्रस्तुत किया जा सकता था। इस सुविधा के कारण केरल से आसाम तक सौराष्ट्र से उत्कल तक गीत गोविंद मंदिरों और राजप्रासादों में खेला जाने लगा।

इस प्रकार यह स्पष्ट है की वर्तमान लोक नाट्यों के उदय की पृष्ठभूमि भी जयदेव के गीतगोविंद पर आधारित थी। और इसी नृत्य गायन, संलाप प्रधान शैली से आगे चलकर सभी लोक नाट्यों की रचना हुई। यही कारण है की विभिन्न लोकनाटकों की प्रदर्शन शैली में बहुत सी समानता आज भी विद्यमान है। अन्त: वर्तमान लोक नाट्यों का उदय भी लीला नाटक शैली से ही हुआ। हमारा यह कथन इस तथ्य से भी प्रमाणित होता है की भाषा नाटकों में जो सबसे प्राचीन लोक नाटक उपलब्ध है। वह भी उमापति द्वारा रचित 'पारिजातहरण' लीला नाटक ही है, जो १४ वीं शताब्दी में रचा गया था।

कूडियाट्टम :-

वर्तमान भाषा नाटकों में कूडियाट्टम सबसे प्राचीन है जिसको विकसित करने में केरल नरेश राजा कुलशेखर वर्मा की प्रधान भूमिका थी। कूडियाट्टम शब्द का अर्थ ही मिलाजुला रूप है। कुलशेखर वर्मा ने नाट्य की कई शैलियों को मिलाकर कूडियाट्टम शैली चलाई थी, उसमें कुलशेखर वर्मा ने लोक नाट्योन के चाक्यार और विदूषक का मिश्रण किया तथा स्थानीय भाषा को महत्व देकर उसको नवीन किया। शैली में रचा गया उनका नाटक 'सुभद्रा धनपद' बहुत प्रसिद्ध व लोकप्रिय है यह नाटक भी लीला नाटक से ही है। इस प्रकार लीला नाटकों की नवीन शैली का प्रारम्भ दक्षिण से ही हुआ। जिसका विकास विभिन्न क्षेत्रों में अपने अपने ढंग से हुआ।

जिस समय देश में लोक नाटकों का विकास हो रहा था। उसी समय भारत में मुसलमानी शासन दृढ़ हो रहा था। और उसकी कट्टरता से हिन्दू समाज अपने दमित, अपमानित मानकर क्षुभित था और एक ओर निराशा का वातवरण पनप रहा था, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप देश में कई आंदोलन का सूत्रपात हुआ। इस काल में दक्षिण से कई संत उत्तर में आकार बस गए और उनकी प्रेरणा से जो भक्ति आंदोलन का देशव्यापी रूप खड़ा हुआ। उसने विभिन्न अंचलों में लीला नाटकों की स्थापना में विशेष योगदान दिया। भगवान राम, कृष्ण, नृसिंह आदि के अनेक कथानकों के आधार पर विभिन्न क्षैत्रों लीला नाटकों के विभिन्न मंच स्थापित हुए। ऐसे मंचों में असम का अंकिया नाट सबसे प्राचीन लगता है।

भागवत मेल :-

तमिलनाडु के लोकनाट्यों में भागवत मेल लीला नाटकों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कहा जाता है की इसकी परंपरा ११वीं शताब्दी तक जाती है, परंतु वास्तव में इसका उत्कर्ष तीर्थ नारायण योगी के द्वारा हुआ जिसने स्वयं 'कृष्ण लीलतरिंगनी' की

रचना की थी। इसने अपनी मान्यता के अनुसार इस मंच को संगीत, नृत्य और अभिनय की त्रिवेणी के रूप में सजाया। भागवत मेल प्राचीन नाट्य परंपरा का प्रांतीय भाषाओं में पुनरुत्थान है। कला के उच्चतर रूपों में विश्वास और रुचि रखने वाले महत्वाकांक्षी आधुनिक नर्तकों को इस कला में उच्चस्तरीय संगीत अभिनय और 'नन्दृवंगम' का खजाना मिल सकता है।

दशावतार :-

भगवान विष्णु के दस अवतारों की लीला को अपनी कथावस्तु बनाने वाला दशावतार महाराष्ट्र का दूसरा ऐसा नाटक है जिसमें साधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग होता है। दशावतार लीला में यह आवश्यक नहीं की विष्णु के सभी अवतारों की लीला दिखाई जाती है। प्राय: पशुराम, बुद्ध व कल्कि अवतारों का तो उल्लेख भाग ही होता है। राम और कृष्ण की लीलाओं को अन्य की अपेक्षा ज़्यादा महत्त्व मिला, इन लीलाओं में रोचकता बढ़ाने के लिए विदूषक मंच पर विशेष रूप रहता है।

ललित :-

जात्रा नाटकों में मिलती जुलती एक धार्मिक लोक नाटकों की परंपरा 'ललित' नाम से बड़ी लोकप्रिय रही है। जो अब धीरे धीरे समाप्त हो रही है। ललित नाटकों का प्रारम्भ महाराष्ट्र में सन १८९०-९५ के आस-पास हुआ था। आनंद कुमार स्वामी ललित की व्युत्पति लीला से ही मानते हैं। इस दृष्टि से यह परंपरा लीला नाटक की कड़ी है। महाराष्ट्र का मंच होते हुए भी इस मंच की भाषा उत्तर भारत की लोक प्रचलित हिन्दी है। ललित का संबंध भारूड़ शैली से है। कहीं हिन्दी, कहीं मराठी, कहीं मिश्रित और कहीं एकदम लोकगीतों का समावेश इस मंच की विशेषता है।

रासलीला :-

संस्कृत रंगमंच के विघटन के बाद मध्य युग में भक्ति आन्दोलन के फल स्वरूप, देश में नाट्य परंपरा का जो दूसरा चरण शुरू है उसमें उभरने वाले नाट्य रूपों में, विशेषकर हिन्दी भाषी क्षैत्र में रासलीला कई दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

वैष्णव पुराणों पर दृष्टिपात करते हैं तब हमें भगवान कृष्ण की रासलीला के विविध वर्णन प्रचुर मात्र में उपलब्ध होते हैं। पुराणों के साथ-साथ (हल्लीसक क्रीड़ा) का उल्लेख मिलता है। संस्कृत के साथ साथ भारत की सभी भाषाओं के उस वाङ्मय में जहाँ कृष्ण के चरित्र का उल्लेख है वहाँ उनके रास का भी वर्णन विशेष रूप से है। विद्वानों का मत है की कृष्ण द्वारा प्रारम्भ किया गया यह नृत्य कालांतर में पूरे जन साहित्य का आधार था। आज भी ब्रज और मणिपुर में श्रीकृष्ण को आधार मानकर रास की जो परंपरा प्रचलित है वह कृष्ण की इसी पौराणिक परंपरा का परिवर्ती रूप है। मध्यकाल में संतों ने ब्रज की यात्रा की तथा यहाँ की नृत्य, गायन शैली को अपने क्षेत्र में नाट्य रूपों में प्रयोग किया। वैष्णव नाट्य परंपरा में ब्रज की रासलीला का प्रमुख स्थान है।

भारत का उत्तरी भाग खासकर पूर्वाञ्चल सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र रहा। वैष्णव संप्रदाय के जनक चैतन्यदेव का जन्म बंगाल में ही हुआ। असम में शंकरदेव वैष्णव संप्रदाय के पुरोधा हुए। उड़ीसा ने जयदेव की गीतगोविंद की परंपरा को सँजोय रखा तो बिहार में वैष्णव लोक नाटकों का जन्म हुआ।

अकेले बिहार में ही कीर्तनियाँ, बिदापत, नारदी गायन, रासलीला, तथा पूर्वी बिहार में जात्रा जैसी नाट्य परम्पराएँ जीवित है। यही कारण है की बिहार वैष्णव आंदोलन में मुख्य भूमिका निभाता है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से बिहार, बंगाल, असम, सिक्किम, अरुणाचल, मणिपुर, त्रिपुरा, नागालैंड आदि राज्यों के क्षैत्र को पूर्वाञ्चल कहा जाता है। प्राचीन काल से ही पूर्वाञ्चल में लोक नाट्यों की सदृढ़ परंपरा रही है, जिसमें भाषिक भिन्नता रहते हुए, मौलिक प्रदर्शन में शैली में कहीं न कहीं समानता है या एक दूसरे से प्रभावित है।

१३वीं सदी में राजदरबारों में नाट्यकला को प्रोत्साहन मिला। १४ वीं शताब्दी में मिथिला में कर्णाटवंशी शासक हरीसिंह देव ने नाट्यकलाओं और नाटककारों को प्रश्रय दिया। उनके ही दरबार में ज्योतिरीश्वर ठाकुर ने 'धूर्त समागम' और 'पारिजातरण' नाटक की रचना की। कीर्तनियाँ नाट्य परंपरा में पारिजातहरण बहुत ही लोकप्रिय हुआ, जिसका मंचन दक्षिण भारत के राजदरबारों में हुआ तथा अपने समकालीन और परवर्ती नाट्यरुपों को प्रभावित भी किया। लेकिन दरबार के साथ ही लोक में भी इसके प्रदर्शन होते रहें हैं। १५वीं शताब्दी तक भक्ति आंदोलन का प्रसार उत्तर और पूर्व भारत तक हो चुका था। ब्रजमंडल देश के वैष्णव भक्ति का केंद्र बना। भक्तिकाल में कृष्ण तथा राम की लीलाओं को गीत एवं नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। यह वही समय था जब पूर्वाञ्चल के कई संतों ने ब्रजमंडल का दौरा किया जिसमें शंकरदेव तथा चैतन्य प्रमुख थे। इन्होंने अपने क्षेत्र में जाकर वैष्णव मत का प्रचार किया तथा पूर्वाञ्चल एवं पूर्वोत्तर भारत में भावना, ढब जात्रा, गोड़ लीला, शुमाङ्ग लीला, जात्रा आदि पारंपरिक नाट्य अस्तित्व में आए।

पूर्वोत्तर भारत के इतिहास पर गौर करे तो यह राज प्राचीन काल से ही व्यापक गतिविधियों का केंद्र रहा। पूर्वाञ्चल के बारे में अपना मत प्रकट करते हुए विश्वेशर जी कहते हैं :

'सरयू, सोन से बंगसागर तक तथा पूरी से हिमगिरि तक, तथा नेपाल उपत्यका से असम अधिपत्य तक जो भी जंगल, पहाड़, जल स्थल, भाव, विचार परंपरा प्रचलित है, अपने प्रकृति परिवेश से एक विलक्षण पूर्वाञ्चालीय परिधि प्रस्तुत करता है'।

इन राज्यों में आदिम संस्कृति की प्रधानता है जहां बाहरी या सभ्य समाज की परंपरा और संस्कृति का प्रभाव कम ही पड़ा। लेकिन पूर्वाञ्चलीय संस्कृति से हम आदिम 'जनजातीय संस्कृति' को अलग नहीं मान सकते, क्योंकि पूर्वाञ्चल के अन्य भागों में आदिवासी जनजाति रहती है। इस प्रकार पूर्वाञ्चल संस्कृति के निर्माता आदिम तथा सभ्य दोनों समाज के लोग थे। एक ही साँझा संस्कृति से कारण लोक उत्सवों में भी समानता है। सम्पूर्ण पूर्वाञ्चल किसी न किसी नदी के किनारे बसा हुआ है अत: नदियों को लेकर भी एक साँझी संस्कृति यहाँ मिलती है। कहा जा सकता है की भाषिक विविधता होने के बावजूद इन राज्यों में सांस्कृतिक एकता है। यह कारण उस पृष्ठभूमि को तैयार करते हैं, जिनसे एक साथ सम्पूर्ण पूर्वाञ्चल में वैष्णव धर्म पैर पसार सका तथा कई लोक नाट्यों का प्रादुर्भाव हुआ। वैष्णव आंदोलन की पृष्ठभूमि तथा उसके प्रचार में इन लोक नाटकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। इन सभी राज्यों में बिहार सारथी की भूमिका निभाता है। डॉ. विलियम स्मिथ मिथिला बिहार की ऐतिहासिकता पर लिखते हैं :

Drama was being written in mithila in the early 14th centuary as can be seen in such a play, the 'dhurttsamagama' of jyotirishvara

from about 1325. This makes it not onle the oldest Maithili drama but perhaps even the oldest-varnnacular work of northan India .(natkam muktisadhkam, edit by budheshwar saikia, shankardeva's dramas : the golden mean – article written by william smith, university of stockhom)

मिथिला में नाटक लिखने की शुरुआत १४वीं शताब्दी में हुई। ज्योतिरीश्वर ठाकुर का धूर्तसमागम १३२५ ईस्वी में लिखा गया ऐसा नाटक है जो ना केवल मिथिला अपितु सम्पूर्ण उत्तर भारत में लिखा गया पहला नाटक है।

बिहार कला एवं कलाकारों का मुख्य केंद्र रहा है, महाजनपद काल में अंग, मिथिला और मगध कलाकारों का संरक्षण स्थल था। रामायण और महाभारत के अन्त: साक्ष्य के अनुसार यहाँ के आंजनों का गणतन्त्र से गहरा संवाद था। अत: लोककला रूपों को गणतन्त्र ने पर्याप्त संरक्षण दिया।

इतिहास में देखें तो तुर्क- पठान आधिपत्य हो जाने पर मिथिला अपने सांस्कृतिक मार्ग पर आगे बढ़ता रहा। इस समय में मिथिला में जो शासक थे वो कर्णाटवंशी थे। लेकीन उन्होने संस्कृत के अलावा मैथिली, भाषा को भी प्रोत्साहित किया।

मिथिला गेय काव्य का केंद्र था। उमापति ने अपने नाटक 'पारिजातहरण' में मैथिली में ही गीत लिखे हैं। ज्योतिरीश्वर ने वर्णरत्नाकर में 'लोरिक' नाम के लोकगीतों का उल्लेख किया है, जो मिथिला में आज भी लोकप्रिय है। मिथिला में जो दर्शन का विकास हुआ और साहित्य में जो नई धारा प्रवाहित हुई उसने आसपास के प्रदेशों को प्रभावित किया। राधाकृष्णन चौधरी ने डॉ. दिनेशचन्द्र का हवाला दिया जिनका विचार था की 'बंगाल को अपनी सभ्यता मिथिला से प्राप्त हुई'।

मिथिला के नाटकों और संगीत का प्रभाव बंगाल, उड़ीसा, असम और पश्चिम में हिन्दी प्रदेश के शेष भाग पर काफी हुआ। इस प्रभाव और विस्तार का प्रमाण यह है की विद्यापति की रचनाओं की पाण्डुलिपियों नेपाल, बंगाल आदि प्रदेशों में भी मिलती है।

सर्वप्रथम जयदेव का गीतगोविंद तत्पश्चात विद्यापति वैष्णव मत को प्रचारित करने में मील का पत्थर साबित हुए। गीतगोविंद गीतिनाट्य है। विभिन्न चरित्रों के मध्य जैसे श्रीकृष्ण, राधा और सखियों के बीच यत्र तत्र गेय संवाद है। श्री कृष्ण कीर्तन भी एक लोकनाट्य है। गीतगोविंद में राधाकृष्ण के लौकिक प्रेम या मिलन की कथावस्तु के चारों और बुने गए प्रगीतों का सतत क्रम है, जो मुक्तक होते हुए भी कथात्मक भी है। उसी तरह विद्यापति के कृष्ण विषयक पदावलियाँ सम्पूर्ण पूर्वी भारत में गाई जाती है।

वैष्णव आधारित कथानकों में बिहार के कीर्तनियाँ तथा बिदापत नाच लोकनाट्य है। कीर्तनियाँ देशव्यापी सामाजिक और सांसकृतिक परिस्थितियों का परिणाम था। कीर्तनियाँ के कथानकों में उषाहरण, कृष्णकेलिमला, श्रीकृष्ण जन्मरहस्य, माहावानन्द, गौरी स्वयंवर कृष्ण विषयक थे। कीर्तनियाँ नाट्य परंपरा में उमापति ने पारिजातहरण नाटक की रचना की। यह नाटक भाषा और शिल्प के स्तर पर न केवल मिथिला बल्कि पूर्वाञ्चल भारत के कई रूपों को प्रभावित किया। पारिजातहरण का कथानक हरिवंशपुराण (अध्याय १२४ -१३५), विष्णु पुराण (अध्याय ५, श्लोक ३० - ३१) और श्रीमदभागवत गीता के पारिजात पुष्प के लिए कृष्ण और इन्द्र के बीच हुए विवाद और युद्ध के प्रसंग पर आधारित है। त्रिपुरा का 'ढब जात्रा', बंगाल की 'जात्रा', बिदापत में 'पारिजातहरण' का कथानक कई दिनों तक मंचित होता रहा।

मध्यकालीन वैष्णव भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि में एक नाट्य रूप सामने आता है - बिदापत। बिदापत में आज भी गीतगोविंद की नाच गान पद्धति तथा ब्रज की रास परमपरा के अवशेष देखे जा सकते हैं जगदीश चंद्र माथुर ने बिदापत को विद्यापति से प्रेरित माना है। बिदापत के पूर्वरंग में विद्यापति की पदावलियाँ गाई जाती है। विद्यापति के राधा-कृष्ण विषयक पदावली में कथा तत्व जुडने से बिदापत जैसे नाट्य रूप अस्तित्व में आया।

बिदापत मंच पर कृष्ण के जीवन से जुड़े कथानकों या लीलाओं को प्रदर्शित किया जाता है। 'बंसीलीला', 'नागलीला', 'मानलीला' आदि प्रमुखता से प्रस्तुत होते हैं। कभी बिदापत मंच पर 'पारिजातहरण' और 'कालियदमन' का मंचन भी होता है।

वैष्णव भक्ति नाट्य परंपरा की सशक्त नाट्य परंपरा हमें बंगाल में मिलती है, जहाँ वैष्णव भक्ति आंदोलन के पुरोधा चैतन्य ने वैष्णव भक्ति का प्रचार प्रसार किया। यहाँ का प्रसिद्ध लोक नाट्य :

जात्रा

मध्ययुगीन बंगाल में लोक नाटक का एक रूप विकसित हुआ, जो 'कृष्ण- यात्रा' जात्रा के नाम से जाना जाता है। यह संगीत नाटक का एक रूप है। इसके सभी संवाद कंठ-संगीत में हैं। कृष्ण, राधा और दो सेविकाओं के चरित्र इसमें थे। जयदेव का गीतगोविंद बंगाल के वैष्णवों में अत्यधिक लोकप्रिय था। अत: यह स्वाभाविक ही है की लोक नाटक का रूप जयदेव के गीतगोविंद पर आधारित है।

पंद्रहवीं शताब्दी में भक्ति आंदोलन का बंगाल के जनजीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। भक्त देवता की आराधना के लिए जुलूसों में नाचते-गाते थे। इसमें धार्मिक विषयक कथानक मंचित होते हैं। चैतन्य देव इसके प्रणेता माने जाते हैं। वैष्णव मत को प्रचारित करने में जात्रा का अधिक प्रयोग हुआ। इसमें कीर्तन, नृत्य, गीत शैली का प्रादुर्भाव होने के कारण समृद्ध हुआ।

अंकिया:-

अंकिया आसाम का जनप्रिय पारंपरिक नाट्य रूप है। इसे वैष्णव नाटक भी कहा जाता है। इसे आदि प्रणेता प्रसिद्ध वैष्णव संत शंकर देव को माना जाता है। शंकर देव ने अपने शिष्यों सहित ब्रजमंडल की यात्रा की। वहाँ उन्होने कृष्ण के जीवन पर आधारित लीलाओं को देखा वहाँ से वह पूर्वाञ्चल भारत की यात्रा पर गए। वहाँ उन्होने बंगाल में जात्रा तथा बिहार में कीर्तनियाँ (उमापति रहित पारिजातहरण) आदि देख असम लौटने के बाद अनुभव से ब्रजबूली की रचना की।

शंकरदेव कालीन आसाम राजनैतिक दृष्टि से पूर्णत: असुरक्षा, अमर्यादित, आक्रमण के अमानवीय व्यवहार का क्षेत्र बना हुआ था। अत: विखंडित और हताश राजनैतिक स्थिति ने समानी जनता को शांति और सुरक्षा के लिए मानवतावादी शंकर भक्ति के प्राप्ति के योग्य वातावरण तैयार करने में सहयोग दिया। शंकरदेव ने वैष्णव मत के द्वारा वहाँ की त्रस्त जनता को एक मार्ग दिखाया। घोर कर्मकांडी, तंत्र साधना से युक्त कामरूप के लिए वैष्णव पाठ एक विकल्प के तौर पर उभरा व जातिवादी रूढ़ियों को तोड़ने के कारण भी आसाम में यह व्यापक तौर

पर प्रसारित हुआ।

पूर्वोत्तर भारत के संतों ने कृष्ण को अपना नायक बनाया। जिसमें मणिपुर के लोक नाट्य भी शामिल है।

गोड़ लीलाः-

मणिपुर की गोड़ लीला के केंद्र में कृष्ण ही है। यह एक लोकनृत्य है तथा इसका प्रदर्शन वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से आरंभ हुआ। गौरलीला का स्वरूप दो सांस्कृतिक धाराओं के संयोग से निर्मित हुआ। इनमें से एक मैते परंपरा थी तो दूसरी गौड़िय वैष्णव चिंतन धारा। यह माना जाता है की सन १४७० में कीपाम्बा महाराज के काल में वैष्णव उपासना शुरू हुई थी। मणिपुर राजनीतिक दृष्टि से काफी अस्थिर रहा। १०० वर्षों में २० राजाओं ने शासन किया इन वर्षों में यहाँ कई कला रूपों का जन्म हुआ। गरीबनिवास के समय रमानन्दी ने वैष्णव संप्रदाय को राजधर्म घोषित किया। इस समय मणिपुर में गौड़िय संप्रदाय के अनुनायी भी थे। भाग्यचन्द्र के काल में यहाँ वैष्णव धर्म को प्रश्रय मिला। गौडलीला में मुख्यत: चैतन्यदेव की बाल लीलाएँ अभिनीत की जाती है और गौड़ लीला के परयोक्ताओं ने चैतन्य देव ने चैतन्यदेव को कृष्ण रूप तथा ईश्वरीय गुण से स्थापित करने की कोशिश की है।

शुमाङ्ग लीलाः-

मणिपुर का ही एक और लोक नाट्य है शुमाङ्ग लीला। शुमाङ्ग अर्थात आँगन, आँगन में होने वाली लीला। यह एक सामाजिक लोक नाट्य है। इष्ट कला रूपों में प्रस्तुत विषय वैष्णव भक्ति से जुड़े हैं, जिसका आधार, रामायण, महाभारत, तथा अन्य पौराणिक आख्यान है। शुमाङ्ग लीला के कथानक सामाजिक संदर्भों से जुड़े होते हैं।

ढब जात्रा

पूर्वोत्तर का एक राज्य है त्रिपुरा। त्रिपुरा भी राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थितियों में काफी उतार चढ़ाव वाला रहा है। वैष्णव लोक नाट्य की परंपरा यहाँ भी रही जिसमें ढब जात्रा प्रमुख है। ढब जात्रा कृष्ण विषयक रंगमंच की देन है। वैष्णव भक्ति की चेतना छाया में इन नाट्य रूपों का जन्म हुआ।

भारत के इतिहास में 'मध्यकाल' व्यापक बदलाव का संकेत लेकर आता है। एक ऐसे वैचारिक आंदोलन का जन्म इस युग में होता है, जिसने कई सांस्कृतिक धारणाओं को जन्म दिया। इससे निकली शाखाओं ने सामाजिक परिवर्तन की नई बयार को बहाया। राजनीतिक उथल पुथल से त्रस्त जनता के लिए यह आंदोलन विकल्प के तौर पर उभरा। जनता ने आशाहीन दृष्टि से अपने अतीत के नायकों को वर्तमान में स्थापित किया। संतों ने ईश्वर का मानविकीकरण कर उसे जनमानस के मन में बसाया।

जनमानस ईश्वर की लीलाओं को देखकर स्वयम की पीड़ा भुला जाता है वह उसे अपने जीवन के अनुभव के रूप में स्वीकार्य करता है, वह ईश्वर को कष्टहरता के रूप में स्वीकार्य करता है। इसी आंदोलन की देन वैष्णव आंदोलन जिसने दक्षिण से होते हुए उत्तर तथा पूर्व में पैर पसारा। कर्मकांड, जातिवाद के विरुद्ध प्रचारित इस मत को भारतीय जनमानस ने खुली बाँहों से स्वागत किया।

ऊपर दिये गए तथ्यों के आधार पर निम्नलिखित पक्ष हमारे सामने आते हैं -भक्ति आंदोलन में अपने विचारों को जनमानस तक पहुँचाने के लिए संतों ने लोक नाट्यों का सहारा लिया साथ ही कई नाट्य रूपों को भी जन्म दिया।

दक्षिण से पूर्वी भारत के परंपरागत नाट्यों में एक ही पौराणिक कथानकों का प्रयोग हुआ है। 'नृसिंहवतार','श्रीकृष्णलीला', 'रामचरित', महाभारत के दृश्य, यह कथाएँ आसाम से लेकर केरला तक के नाट्यों में मिलती है।

१५वीं शताब्दी में उत्पन्न भक्ति आंदोलन के पश्चात ब्रजमंडल केंद्र बना। उस समय ब्रज में रास नृत्य, गीत, अभिनय की परंपरा थी। विभिन्न क्षेत्रों से आए वैष्णव संतों ने इन रूपों को देखा तथा अपने क्षेत्र में जाकर नए नाट्य रूपों को जन्म दिया। असाम का अंकिया नाट, बंगाल की जात्रा, मणिपुर की गौर लीला तथा शुमाङ्ग लीला, त्रिपुरा की ढब जात्रा इसी वैष्णव आंदोलन की देन है।

मध्यकाल में विष्णु के दो अवतार राम तथा कृष्ण की लीलाओं का व्यापक प्रसार हुआ। जिससे लीला नाटकों का जन्म हुआ। मध्यकाल का समाज व्यापक परिवर्तन से गुजर रहा था। जातिवाद, कर्मकांड, आर्थिक विपन्नता से त्रस्त समाज इन लीला नाटकों को देखकर सुख प्राप्त करती थी। संतों ने इन नाट्य रूपों के माध्यम से कृष्ण तथा राम की लीलाओं को जनमानस तक पहुंचाया।

एक ही विचारधारा के नीचे जन्में इन लोक नाट्यों में काफी समानताएँ मिलती है। अभिनेता को 'नटुआ', निर्देशक को 'मुलगाईन' तथा ग्रीन रूम को 'साजघर' कहा जाता है।

सभी लोक नाट्य रूपों में स्थानीय वाद्य यंत्रों का प्रयोग हुआ है। जबकी मृदंग लगभग सभी लोक नाट्य रूपों में प्रयोग होता है।

विदूषक की उपस्थिति लगभग सभी नाटकों में बराबर है।

इन सभी नाट्य शैलियों में सूत्रधार किसी न किसी रूप में विशिष्ट भूमिका का सम्पादन करता है। कहीं समाज गायन करके लीला का नियंत्रण करता हैं। कहीं नाटक के पात्रों का परिचय देता है। कहीं लीला प्रसंगों की व्याख्या करता है।

मुखौटे का प्रयोग इन सभी लीला नाटकों में होता है। इन मुखौटों की अपनी क्षेत्रिय विशेषता है।

संतों में 'संगीत' को ईश्वर प्राप्ति का प्रमुख माध्यम माना गया है। अत: हमारे सभी लीला नाटक नृत्य और संगीत से जुड़े है। स्थानीय तथा शास्त्रीय दोनों रागों का समावेश यहाँ होता है। जगदीश चंद्र माथुर ने इन्हे 'संगीतक' कहा है। गीत, वाद्य, नृत्य, रंगशाला तथा नट -नटी जिस प्रदर्शन में हो वो संगीतक है हमारे उक्त लीला नाटकों में यह सभी तत्त्व मौजूद है।

पूर्वाञ्चल भारत में जब राष्ट्रवाद की पूर्वपीठिका तैयार हो रही थी तो इसकी भावनात्मक और सामाजिक पृस्ठभूमि वहाँ के लोक गायक तैयार कर रहे थे। भक्ति आंदोलन के बाद यही एक समय था जब मानव को श्रेष्ठ बताया गया। मानवतावाद भक्ति आंदोलन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी।

कहा जा सकता है की लोक जनमानस में प्रचलित लोक कथाओं का अपने आंदोलन के साथ समन्वय संतों ने किया। जिस प्रकार राम लोकजनमानस में पहले से मौजूद थे। मिथिला का लवहेर- कुशेर तथा कुषान गान प्राचीन काल से ही राम कथा के रूप में मौजूद है। उसी तरह कृष्ण कई उपनामों के साथ लोक में प्रचलित थे। वैष्णव आंदोलन ने इन ईश्वरीय चरित्रों का समाजकीकरण किया तथा आलोकिक से लौकिक धरातल पर उनको स्थापित किया। लोक में इन दो रूपों के पूर्व प्रचलित होने के कारण ही वैष्णव आंदोलन सम्पूर्ण देश में फ़ैल सका तथा राष्ट्र एक सांस्कृतिक सूत्र में जुड़ा।

❒

अनिता ललित की कविताएँ

अनिता ललित

जन्मतिथि: 6 सितंबर, जन्म स्थान- इलाहाबाद, शिक्षा: एम. ए. इंग्लिश लिटरेचर, मई 2012 में अपना ब्लॉग शुरू किया। कुछ कविताएँ, दो कहानियाँ तथा कुछ लेख लिखे हैं। कुछ कविताएँ व एक कहानी 'दैनिक भास्कर' राजनाँदगाँव में प्रकाशित। फेसबुक में 'साहित्यिक मधुशाला' के हाइकु ताँका मंच पर भी रचनाएँ हैं और उनमें भी विजेता रही हैं। हिन्दी कुंज व 'सहज साहित्य' पर भी रचनाएँ 'अभिनव इमरोज़' पत्रिका में हाइकु प्रकाशित। अमरीका से निकलने वाली पत्रिका 'यादें' तथा 'अविराम' में क्षणिकाएँ प्रकाशित।

संपर्क : 1/16 विवेक खंड, गोमती नगर, लखनऊ (उत्तर प्रदेश), 226010, भारत

ई मेल - anita.atgrace@gmail.com

ज़िन्दगी...एक कविता...

कुछ हँसते, कुछ ग़मगीन लम्हें....
लपेट कर चलती है ये ज़िंदगी..!
कभी सातवें आसमान पर खिलखिलाती...
तो कभी किसी गढ़े में सहमी सी...
अक्सर मिलती है ये ज़िंदगी..!
समय चलता जाता है.....
मगर थक कर...कभी कभी...
थम जाती है ये ज़िंदगी...!
कभी सुक़ून-ओ-चैन के संग...
कभी विरोधाभास में...
साँस लेती है ये ज़िंदगी..!
दिल में उमड़ते घुमड़ते....
जज़्बात के, एहसासों के रेले...
सब झेलती है... ये ज़िंदगी !
कभी हालात का हाथ थामे...
कभी बग़ावत करती है... ये ज़िंदगी..!
जब कभी भी छलकी किसी कोरे काग़ज़ पर..
अपने चेहरे की सारी
आड़ी-तिरछी लकीरें खींचकर...
अपना नाम लिख जाती है...ये ज़िंदगी.....
दुनिया उसे कविता समझकर पढ़ती है...
मैं बस जीती जाती हूँ ...वो ज़िंदगी....

सुनो कभी खामोशी की कहानी...

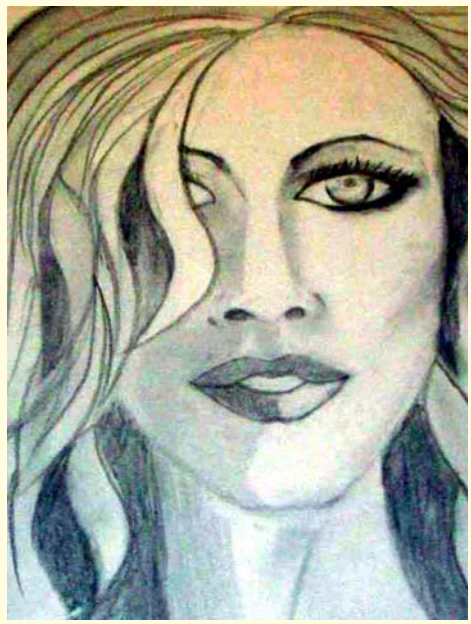

दर्द लिख जाता.. खूबसूरत सी रुबाई...
आँखों में...अश्कों की रवानी...
तैरते खुश्क़ सपनों की ज़ुबानी...!
सुनो कभी खामोशी की कहानी..!
चाँदनी लजाती, बिखरती.. गुम जाए...
सूनी सियाह रात में..
क़तरा क़तरा चाँद से पिघले...
हो जाती शबनम बेमानी..!
सुनो खामोशी की कहानी..!
ख्वाहिशों की क़तार बहकती...
भटक जाए....राह-ए-जुनूँ में..
सेहरा में रिसते छाले...
हो जाती मोहब्बत पानी पानी..!
सुनो कभी खामोशी की कहानी..!
रूह आज़ाद महकती..
गुनगुनाए ...ठंडे जिस्म में...
धड़क उठते..दहकते शोले...
खिल जाती.. ज़िंदगी की वीरानी..!
सुनो कभी खामोशी की कहानी.....!!!

प्यार...

प्यार खिलती मुस्कान, आँसू की ज़ुबान भी है !
तन्हाई का साथी, भीड़ में बियाबान भी है !
स्पर्श की मीठी सिहरन, तंज़ से लहूलुहान भी है !
पोखर में कमल, सागर में तूफान भी है !
फूल की खुश्बू, काँटों का सामान भी है !
सूरज की तपिश, बारिश का वरदान भी है !
अमावस की रात, चाँदनी का अरमान भी है !
विरह की बदरी, पपीहे की तान भी है !
धड़कन की सरगम, जिस्म की जान भी है !
हर जवाब की बुनियाद, हर सवाल का एहतराम भी है!
प्यार जीवन का आगाज़, जीवन का अंजाम भी है
❒

मृदुला प्रधान की कविताएँ

मृदुला प्रधान

बिहार के दरभंगा शहर में जन्मी और पली-बढ़ी मृदुला प्रधान के लेखन की मुख्य विधा कविता है। एक गृहिणी के रूप में रोज़मर्रा की छोटी-छोटी बातों से सीधी, सरल कविताएँ लिखती हैं। पाँच कविता संग्रह प्रकाशित हो चुकी हैं। इसके अलावा समय-समय पर 'कादम्बिनी', 'सरिता', 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'नंदन', 'चंपक' एवं प्रादेशिक पत्र-पत्रिकाओं में भी कविताएँ प्रकाशित होती रहतीं हैं। आकाशवाणी से प्रसारण और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में कविताओं का मंचन होता है।

यह कोई लेन-देन का.....

यह कोई लेन-देन का
कारोबार नहीं,
नफ़ा-नुकसान
इसका आधार नहीं,
नि:स्वार्थ प्रेम
माँ के आँचल का
खज़ाना है,
यह स्नेह का
बंधन है,
व्यापार नहीं.
मेरे दोस्त.......
कभी उँगलियों पर
मत गिनना,
इसकी
तौहीन होती है,
यह ममता की
अनुभूति है,
बस......
मन में सोती है.
और पिता........
हर उम्र में पिता
बच्चे के
मन से कहीं ज्यादा,
दिमाग में ठहरता है
और दिमाग
मन की तरह,
अंधा नहीं होता।
विश्लेषण करता रहता है,
सोचता रहता है,
खोजता रहता है
और इस प्रक्रिया में,
पिता से प्यार
बढ़ता रहता है.......'

एकांत के प्रतिबिम्ब में......

'एकांत के प्रतिबिम्ब में
डूबता-उतराता हुआ
मेरा मन,
अंतरंग वीथियों में
परिमार्जित होते हुए
मेरे सुख-दु:ख,
नीले-नीले सपनों को
सजाते-सँवारते हुए
मेरी पलकों के पँख
और
शब्दों के कोलाहल से
भरी हुई
मेरी चुप्पी ने एक दिन,
अपना सारा कुछ
बाँट दिया
उँगलियों को......
उँगलियों ने धीरे-धीरे
सब कुछ निकालकर,
डायरी के पन्नों में
रख दिया......
अब बाँटने जैसा
कुछ भी नहीं है
मेरे पास,
तुम्हें दे सकूँ
ऐसा कुछ भी नहीं है
मेरे पास.......'

सूरज की पहली किरण से......

'सूरज की पहली किरण से
नहाकर तुम
और गूँथकर चाँदनी को
अपने बालों में, मैं
चलो स्वागत करें
ऋतु-वसंत का.......
आसमान की भुजाओं में
थमा दें पराग की झोली
और दूर-दूर तक उड़ायें,
मौसम का गुलाल।
रच लें हथेलियों पर,
केशर की पंखुड़ियाँ,
बाँध लें साँसों में
जवाकुसुम की मिठास
सजा लें सपनों में
गुलमोहर के चटकीले रंग,
बिखेर लें कल्पनाओं में,
जूही की कलियाँ ......कि
ऋतु-वसंत है ....
हवाओं के आँचल पर
खोल दें ख्वाबों के पर,
तरु-दल के स्पंदन से
आकाँक्षाओं के जाल बुनें,
झूम आयें गुलाब के
गुच्छों पर,
नर्म पत्तों की महक से चलो,
कुछ बात करें
आसमानी उजालों में
सोने की धूप छुएँ,
मकरंद के पंखों से,
कलियों को
जगाएँ....कि
ऋतु-वसंत है.......
सूरज की पहली किरण से
नहाकर तुम
और गूँथकर चाँदनी को
अपने
बालों में, मैं
चलो स्वागत करें.......

❐

संतोष सावन की कविताएँ

संतोष सावन

जन्म-01-12-1979, उत्तर प्रदेश के बलिया जिला के अहिरौली गाँव में, शिक्षा-पोस्ट ग्रेजुएट, सम्मान-श्रमजीवी सम्मान सन 2008,प्रेस क्लब लखनऊ, भारतीय रेल में नौकरी, अनेक पत्र-पत्रिकाओं दैनिक जागरण, अमर उजाला, भक्त समाज, सोच विचार आदि में प्रकाशन तथा मंचों पर काव्यपाठ।

बेटी

चिलचिलाती धूप में
तपती धरती पर
चलती जा रही थी।
बार-बार उठाकर टोकरी
मिट्टी से भरी।
चिपकाए छाती से
एक लघु गात।
वातावरण के तपन में
तप कर चिल्ला उठता,
वह अबोध!
पकड़ा कर, अमृतकलश
बैठ जाती, छोटी दीवार के
थोड़ी सी छाँव तले,
छिपा कर उसे आँचल में।
सहसा खड़ी हो जाती
सुनकर, कर्कश ध्वनि
जो गुथी होती थी
भद्दी गाली से।
पुनः चल पड़ती
बिना परवाह किये
सूर्य की उष्ण किरणों की।
दिन में कई बार झेलती
बौछार गालियों की।
देख कर भी, अनदेखा करती
गंदे इशारे,अनसुना करती
चुभती बातें।
सब कुछ सहती
वह चुपचाप।
सत्य तो यही है कि-
वह भी एक बेटी है
पर, मज़दूर की,
पेट की आग से
मजबूर बेटी।

सपना

आदमी, आदमियत को मार
अपनी सोच की
मांद से निकला.....
चौपाये-सी चाल,
शेर की दहाड़
और गिरगिट-सी
रंग बदलने की कला।
एक रात
ये एक टुकड़ा सपना
हमें चौंका गया।
भविष्य का
भावी सत्य दिखला गया।
पर सच में
जिसकी हर जगह दुहाई है
आदमी को आदमी
बने रहने में ही भलाई है।

कविता बोली

कविता के प्रवाह को तोड़
जब उसकी दिशा
मानवीय विसंगतियों की ओर मोड़ा,
वह चिल्लाई-
रे मूर्ख !
ये क्या कर रहा है ?
बने बनाये सुरताल को
उटपटांग राहों पे
क्यों रगड़ रहा है?
बच्चे! समझदारी से काम ले
चापलूसी का दामन थाम ले।
अन्यथा मैं
तेरी डायरी के पन्नों में
गाँधी के संदेशों,
कबीर के उपदेशों की तरह
सड़ती रह जाऊँगी।
छप भी गई
कहीं भूल वश तो
पढ़ेगा कोई नहीं,
मैं पन्ने पर नाक
रगड़ती रह जाऊँगी।
इसलिए मेरा कहा मान
आदमियों में आदमी
चापलूसों में चापलूस दिख
जहाँ जैसे फायदा होता हो
वहाँ मुझे वैसा- वैसा लिख।
❐

पंखुरी सिन्हा की कविताएँ

पंखुरी सिन्हा

जन्म: १८ जून १९७५, शिक्षा:एम ए, इतिहास, सनी बफैलो, पी जी डिप्लोमा, पत्रकारिता, S.I.J.C. पुणे।

प्रकाशन कृतियाँ : कोई भी दिन, क़िस्सा-ए-कोहिनूर (कहानी संग्रह), प्रिजन टॉकीज़ (अंग्रेज़ी में पहला कविता संग्रह) पवन जैन द्वारा सम्पादित शीघ्र प्रकाश्य काव्य संग्रह 'आगमन' में कविताएँ सम्मिलित। पुरस्कार: राजीव गाँधी एक्सीलेंस अवार्ड २०१३, पहले कहानी संग्रह, 'कोई भी दिन', को २००७ का चित्रा कुमार शैलेश मटियानी सम्मान, 'कोबरा: गॉड ऐट मर्सी', डाक्यूमेंट्री का स्क्रिप्ट लेखन, जिसे १९९८-९९ के यू जी सी, फिल्म महोत्सव में, सर्वश्रेष्ठ फिल्म का खिताब मिला।

संपर्क:१७, ६४ व्हिटनेल कोर्ट, कैलगरी, NE, AB, कैनाडा, T1Y5E3

ईमेल:sinhapankhuri412@yahoo.ca

तानाशाह

कुछ और गहरा हुआ पाँव का आलता उसका,
हाथों की मेहँदी उसकी,
बिलकुल बदरंग, बेरंग दिनों में,
जब कहीं नहीं था कोई श्रृंगार,
वो ललाई जैसे काँच पर चलने की थी,
हिना, जैसे भींग गए हाथों की लकीरें,
कुछ ऐसे किया था, इंतजार उसने,
उसके लौटने का,
फिर ख़त का उसके,
किसी खबर का,
फिर अपनी आवाज़ का,
कि नहीं है क़ुबूल,
बहुत कुछ,
बहुत कोई,
बहुत बातें,
कितना भी ज़ालिम हो
सूबेदार,
कितना भी ज़ालिम हो
फौज़दार,
कितनी भी ज़ालिम हो
हुकूमत,
कैसे भी
दुनिया के सारे शहंशाह!

ख़िदमत

उनकी खिदमत में जितना कहा,
कम कहा,
बिम्बों की विपन्नता रही,
शब्दों की कृपणता रही,
हार गयी भाषा जैसे,
चूक गए
सारे शब्दों के हार,
फूल सज्जित
सब बंदनवार,
सारे प्रवेश द्वार,
सब गुम्बद,
स्तम्भ सारे,
ध्वस्त रहा
फूलों का किला,
आक्रमण हुआ,
मिलाप नहीं,
एकालाप रहा,
आत्मा का,
एकाकी रहीं बातें सब.....

छात्र राजनीति का अंदरूनी चेहरा

वो छात्र राजनीति जो उबलती रहती है,
सड़कों पर, हत्या भी करवाती है,
आत्महत्या भी,
जवान,
लगभग बच्चों से छात्रों की,
उसका एक भीतरी चेहरा भी होता है,
जहाँ अजब कूटनीतिक चालें होती हैं,
किसी के संरक्षण में,
प्राप्य की होड़ की अजीब सी,
कई बार
केवल किसी खाली सी जीत की,
अजब भाषा है,
वो अब भी बोल रहा है,
मैं अब भी सुन रही हूँ

घुमाव

आप कह रहे हों,
कि भयानक पहरा है,
हकों पर पाबंदी,
साँस लेना दूभर,
और भी दूभर करे कोई,
लगातार ये कहते,
कि फलाँ नेता का भाषण है,
फलाँ नेता की रैली,
फलाँ अभिनेता की फिल्म का प्रदर्शन,
फलाँ दल का बायकाट है,
क्या आपका समर्थन?

❐

शैफाली गुप्ता की कविताएँ

शैफाली गुप्ता

जन्म: 6 अगस्त 1980, इंदौर, मध्य-प्रदेश, शिक्षा: एम.एस (हॉलैंड), एम.बी.ए (भारत), काव्य संकलन- शब्दों के अरण्य में, पगडंडियाँ में कविताएँ शामिल। हिंदी हाइकु, गर्भनाल, हिन्दी चेतना, प्रयास, विधान केसरी, आरोह-अवरोह, हरिगंधा, लेखनी, सृजक, फ्री प्रेस में (हिन्दी व अंग्रेज़ी) कविताएँ एवं हाइकु प्रकाशित। कविता रचने के साथ- साथ काव्य पाठ में भी रुचि रखती है और रेडियो प्लेबेक इंडिया के 'शब्दों में चाक पर' कार्यक्रम एवं बोलती कहानियाँ में कविताएँ एवं कहानियाँ अपनी आवाज़ में मुखर की है। हाल ही में इन्होंने सुधा ओम ढींगरा की कहानियों का वाचन रेडियो सबरंग एवं श्री रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' व सुकेश साहनी की लघुकथाओं का वाचन लघुकथा डॉट कॉम व रेडियो सबरंग के लिए के लिए किया। वर्तमान में कैलिफ़ोर्निया में सॉफ्टवेयर के कार्य में सक्रिय।

ब्लॉग एड्रेस:
www.guptashaifali.blogspot.com
ईमेल: shaifaligupta80@gmail.com

समझ

वो क्या इशारा है
मैं समझ नहीं पाती,
एक पल की रवानी
एक पल का ठहराव,
एक पल सूरज का ओज
एक पल चाँद सा ठंडापन...
न मालूम,
कहाँ के लिए थामी उँगली उसने
मैं समझ नहीं पाती,
एक पल पर्वतों की उचाईं
एक पल समुद्र सी गहराई,
एक पल काँटों की चुभन
एक पल गुलाब सी मादकता ...
ओ' कान्हा मेरे
समझ से परे
कौन सा है खेल खेलता तू,
बाँह पकड़ घुमाता मुझे
तो कभी छोड़ता निष्प्राण
मैं समझ नहीं पाती...
उलझाव-सुलझाव यही दर्शाते
मगर,
डुबाया, तो तैर सकने के लिए
गिराया, तो उठ खड़े होने के लिए
छोड़ा, तो स्वयं को पा जाने ले लिए
बस इतना ही समझ पाती मैं।

ये ख़्वाहिश है मेरी

भीड़ में रहकर भी सबसे जुदा
सितारों के संग रहकर भी चाँद बनूँ
ये ख़्वाहिश है मेरी
राहों में रहकर भी राहगीर नहीं
पानी में बनती बिगड़ती लहर न हूँ
ये ख़्वाहिश है मेरी
काँटों पर चलकर भी दर्द न हो महसूस
आँसुओं में रहकर भी इक मुस्कराहट बनूँ
ये ख़्वाहिश है मेरी
समंदर के करीब रहकर कोलाहल नहीं
वरन् उसके भीतर का गाम्भीर्य बनूँ
ये ख़्वाहिश है मेरी
शोर के बीच गरज नहीं
वरन् उसके बीच की नन्ही ख़ामोशी बनूँ
ये ख़्वाहिश है मेरी
भीड़ में रहकर भी सबसे जुदा
सितारों के संग रहकर भी
चाँद बनूँ
ये ख़्वाहिश है मेरी

माँ- आप

आम के बौर-सी
भीनी-सी माँ,
गर्मी में गुलमोहर-सी
साहसी-सी माँ,
जेठ की दोपहरी में
छाँव-सी माँ,
गिरते हुए पलों में
आशा-सी माँ,
पहाड़ों के गिरते झरनों में
कलकल-सी माँ,
सुबह-सुबह के पंछियों-सी
चहचाहट-सी माँ,
लड़खड़ाते कदमों में
संबल-सी माँ,
जीवन के रसों में
श्रृंगार-सी माँ,
यादों की झलकियों में,
कृष्णा-सी माँ,
संसार के समस्त रूपों में
आत्मा-सी माँ
❐

Dr. Rajeshvar K. Sharda MD FRCSC
Eye Physician and Surgeon
Assistant Clinical Professor (adjunct)
Department of Surgery, McMaster University

1 Young St., Suite 302, Hamilton ON L8N 1T8
P: 905-527-5559 F: 905-527-3883
info@shardaeyeinstitute.com
www.shardaeyeinstitute.com

हाइकु

डॉ. भगवत शरण अग्रवाल

0
गुलाबी शीत
आलस्य -भरी हवा
यादों की शाम।
0
फूला पलाश
यादों के दीप सजा
आया वसन्त।
0
पलाश -लदी
टहनी-सी मादक
देह की गन्ध।
0
यादें ही यादें
आँखें बन्द कीं तो क्या !
चित्र उभरे।
0
नींद में मेरी
आती हैं परिएँ क्यों
बचपन की।
0
मेरे मन की
विस्तृत नभ गंगा
चित्र तुम्हारा।
0
वर्षों पहले
तुमसे कीं जो बातें
आज भी ताज़ी।
0
टहुके मोर
याद आ गया कौन
इतनी भोर ?
0
भोर के साथ
महक किसकी थी
पागल मन !
❐

ताँका

डॉ.ज्योत्स्ना शर्मा

0
अरे सूरज !
जाने कहाँ खो गया
शीत सिहरा
कोहरे की चादर
ओढ़कर सो गया।
0
दो मुट्ठी धूप
छिड़की यहाँ-वहाँ
मेघ-रजाई
छिप के पूछे रवि-
बूझो तो मैं हूँ कहाँ ?
0
परखना क्या
इन्हें तू प्यार कर
रिश्ते काँच हैं
नाज़ुक से होते हैं
टूटें, दर्द ढोते हैं।
0
जैसे भी चाहो
ओढ़ना या बिछाना
इतना सुनो
ये रिश्तों की चादर
दाग़ मत लगाना।
0
मौला, ये रिश्ते !
कितने अजीब हैं
दूर लगते
अक्सर हमारे जो,
बेहद करीब हैं।
0
सागर तुम
उसमें प्रीत थोड़ी
मेरी मिलाओ
चलो इस धरा को
मधुमय बनाओ।
❐

माहिया

अनुपमा त्रिपाठी

0
हरियाली छाई है
वर्षा की बूँदें
कुछ यादें लाई हैं
0
कोई न कहानी है
मेरे भी मन में
इक प्रीत सुहानी है।
0
प्रियतम घर आया है
आँसू खुशियों के
सावन भरमाया है।
0
जग छल से जीत गया,
छलनी मन करके,
इक सपना रीत गया।
0
जग छल कर हँसता है
सच के नयन भरे
मन-मेघ बरसता है।
0
ये रीत पुरानी है
मन की पीर बनी
हर साँस कहानी है।
0
अनबूझ पहेली है
आँसू में लिपटी
हर हूक सहेली है।
0
यह कौन नगरिया है
आँगन धूप खिली
चन्दन मन दरिया है।
0
मन मेरा भीज रहा
यादों में डूबा
सुधियों में रीझ रहा।
❐

क्षणिकाएँ

मंजु मिश्रा

लखनऊ में जन्म। हिंदी साहित्य में एम.ए.। अनेक वर्षों से हिंदी प्रसार कार्यक्रम के अंतर्गत बे एरिया कैलिफ़ोर्निया के एलीमेंट्री स्कूलों में हिंदी शिक्षण-प्रोग्राम, STARTALK हिंदी टीचर्स ट्रैनिंग प्रोग्राम NYU से सम्बद्ध। कविता संग्रह 'जिंदगी यूँ तो'।

manjumishra@gmail.com

o

गीली हथेलियों में
सहेजती हूँ
सूखी रेत से रिश्ते
ये सोच कर कि शायद
हथेलियों की ये नमी
बाँध ले इन्हें कुछ देर को
और रोक ले झरने से!

o

यूँ कोई तयशुदा
ब्यौरा तो नहीं होता
लेकिन फिर भी
हर सुख की, हर दु:ख की
एक उम्र होती है
न ये सदा के न वो।

o

हारना क्यूँकर भला
अब ज़िदगी की बिसात को
हमसफ़र हों दोस्त
या फिर दुश्मनों का साथ हो।

o

अब तो ज़िद अपनी भी है
रुकने नहीं हैं ये कदम
रास्ते आसान हों
या हर कदम तूफ़ान हो।

मंजु मिश्रा की क्षणिकाएँ

o

आँधियाँ हों, बारिशें हों
लाख बाधाएँ मगर
दीप ये जलता रहेगा,
जुगनुओं की होड़ में।

o

चाँदनी ने न जाने कब
ख़त लिखे थे
ख्वाबों के नाम
पर पता भूल गई,
आज भी वो बेपता ख़त
भटकते फिरते हैं
मंजिल की तलाश में।

o

उछाल दो
मुहब्बत के दो चार लफ्ज़
ज़िन्दगी के दरिया में
वो डूबेंगे नहीं
तैरते रहेंगे और
बन जाएँगे पुल
हमारे बीच।

o

दोष तुम्हारा नहीं
मेरी नज़र में ही ऐब रहा होगा
जो नहीं देख पाई मुखौटों के पीछे से
झाँकती आँखों का सच..
और बार-बार खा गयी धोखा

o

एक तुम और एक मैं
एक तुम हो
तुमने पत्थर तराशा
और देखो
कितना सुन्दर बुत बना दिया
लोग कहते हैं तुम्हारे हाथों में जादू है
तुमने पत्थर में जान डाल दी!
और एक मैं हूँ
एक जानदार
हाड़-माँस का पुतला बनाया
तराशती रही उम्र भर
और वो पत्थर बन गया !!

❐

नव अंकुर

दीपक शर्मा

दर्द बराबर का होता है,
लहू चाहे जिसका भी बहा ...
ऐसा कुछ ना तेरे मज़हब ने सिखाया,
ना मेरे धरम ने,
खातिर जिसके
हमारे बीच का वो प्यार ना रहा .....
खून से सनी तलवार का
बस एक रंग है 'लाल',
मेरे रक्त से न अल्लाह खुश होगा,
न तेरे लहू से राम ...
फिर क्यूँ अपनी खुदगर्जी की खातिर,
कर रहे हैं हम इन दोनों को बदनाम ....
मरे थे मुस्लिम भी
मुंबई के नर-संहार में,
ना थे समझौता एक्सप्रेस के हिन्दू बचे ...
ओवैसी और तोगड़िया !
कोई धर्म नहीं इंसान की मौत का,
अरे सत्ता के लालच में
तुमने कितने घटिया परपंच रचे ...
मैं नास्तिक ही बेहतर हूँ
अगर यही मज़हब और धर्म है,
इंसान-इंसान में फ़र्क ना करूँ,
अभी बाकी इतनी शर्म है ...
जो पूछा कभी मेरे बच्चे ने
कि पापा क्या लिखूँ
'हिन्दू या मुसलमान'
कहूँगा कि बेटा लिख दे बस
'हिन्दुस्तान'...बस 'हिन्दुस्तान'।

❐

mailmenot.deepak@gmail.com

चेस्वाव मिवोश की कविताएँ

अनुवादक: महाभूत चन्दन राय

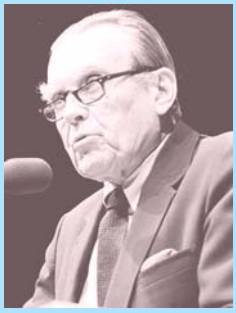

चेस्वाव मिवोश

चेस्वाव मिवोश (३० जून,१९११ लुथानिया १४ अगस्त, २००४ कर्कोव पोलैंड)। पोलिश कवि, उपन्यासकार, निबंधकार और अनुवादक। १९८० में नोबल पुरस्कार से सम्मानित। एक साहित्यिक समूह ज़गारी के एक सह संस्थापक, १९३० में अपनी साहित्यिक शुरुआत की। १९३० में पहली दफा कविताएँ दो खंडों में प्रकाशित और पोलिश रेडियो के लिए काम किया। युद्ध के समय अधिकांश समय वारसॉ में भूमिगत प्रेस के लिए काम किया। उनकी कविताएँ दृश्य प्रतीकात्मक रूपक के रूप में समृद्ध हैं; जो जीवन के सुखद अहसास और लौकिक अनुभूतियों से भरी पड़ी हैं।

महाभूत चन्दन राय

किसी भी साहित्य रचना का महज शाब्दिक अनुवाद करना रचना की प्लास्टिक सर्जरी करना है। इससे रचना की जीवंतता और सौंदर्य अशेष नहीं रहता। अनुवादक का कर्त्तव्य है कि वो मूल रचना और रचनाकार के मंतव्य और भावार्थों का भावांतरण करे। प्रस्तुत अनुवाद में इसी भावानुवाद की कोशिश की गई है। - अनुवादक

rai_chandan_81@yahoo.co.in

प्रेम

प्रेम का अर्थ खुद से प्रेम करना सीखना है
जिस तरह कोई दूरस्थ वस्तुओं को देखता है
जैसे सभी वस्तुओं में आप हैं
और जो भी इस दृष्टिकोण से दुनिया को देखते है
उनके बिना जाने ही
उनके दिल के जख्म खुद-ब-खुद भर जाते हैं
उससे उसकी मुख़्तलिफ़ तकलीफों के बीच
एक वृक्ष और एक चिड़ियाँ कहते हैं-
तुम हमारे मित्र हो
और तब वह खुद को और सभी वस्तु चिह्नों को
इस तरह इस्तेमाल करता है कि
वे उसकी परिपक्वता की रौशनी में
चमचमाती हैं
इससे कोई फर्क नहीं पड़ता
की वो जानता है कि नहीं वो
वह किसी के काम आया कि नहीं
क्योंकि जो किसी के बेहतर काम आता है
ये कभी नहीं समझ पाता।

विस्मृति

तुम उन पीड़ाओं को विस्मृत कर दो
जिनसे तुमने दूसरे लोगों को दु:ख पहुँचाया था
तुम उन पीड़ाओं को भी विस्मृत कर दो
जिन्हें दूसरों ने
तुम्हे दु:ख पहुँचाने के लिए प्रयुक्त किया
पानी का काम केवल बहना और सिर्फ बहना है
बसंत चमचमाते हुए आता है
और बीत जाता है
तुम भूल रहे हो
कि तुम इस नश्वर धरती में जी रहे हो।
कभी-कभी
तुम दूर से सुनाई देते एक गीत का
अंतिम गीतांश सुनते हो,
तुम खुद से पूछते हो
इसका क्या मतलब है ?? ये कौन गा रहा है ??
बच्चों की तरह गर्मीला सूरज उगता है
आपके पोते और पर-पोते पैदा होते हैं
आप एक बार फिर से
एक हाथ की बगल में लेटे हैं।
वो नदियाँ जो कितनी अनंत दिखती हैं
उन नदियों के नाम आप के साथ जिन्दा रहते हैं।
तुम देखते हो कि शहर कितना बदल चुका है
तुम्हारे खेत जुते हुए हैं
तुम इस मूक दहलीज़ पर खड़े होकर दुनिया देखो।

बही-खाता

मेरी मूर्खताओं का इतिहास
कई संस्करणों में लिखा जाएगा
कुछ मूर्खताएँ जिनसे मैंने
अपनी ही आत्म-चेतना को नुकसान पहुँचाया
ठीक उस पतंगे की उड़ान की तरह
जो सब कुछ जानते हुए भी
मोमबत्ती की लौ की ओर उड़ता चला जाता है।
और अन्य
उत्कंठाओं को चुप करने के
तरीके के रूप में लिखी जाएँगी
वो छोटी-छोटी कानाफूसियाँ जो चेतावनी थी
जिन्हें मैंने अनदेखा कर दिया था।
मैं उनके साथ संतोष और गर्व के साथ
अलग से व्यवहार करूँगा
एक समय था
जब मैंने उनसे पक्षपात किया था,
जब मैंने विजय की ऐंठ में
किसी पर संदेह नहीं किया।
लेकिन उन सभी के पास
एक ही विषय होगा
और केवल मेरी ही इच्छा होगी
अफसोस, लेकिन ऐसा नहीं था,
बिल्कुल नहीं था
क्योंकि मैं
दूसरों की तरह बनना चाहता था
....मैं भटक गया था
मैं अपने भीतर के जंगलीपने
और अशिष्टता से डरा हुआ था।
मेरी मूर्खता का इतिहास नहीं लिखा जाएगा,
इस बात के लिए देर हो चुकी है
और यह पीड़ादायी सच्चाई है।

❐

नये वर्ष का नया विहान

नरेन्द्र कुमार सिन्हा

प्राणों को आलोकित कर दे नये वर्ष का नया विहान!

प्राची के अन्तर से फूटी नई प्रेरणाएँ हों जैसे,
डाल-डाल पर जाग रही फिर नई चेतनाएँ हों जैसे,
बीता वर्ष अतीत बन गया, नया वर्ष इतिहास रचेगा,
खुले गगन में लेंगे पंछी नये वर्ष की नई उड़ान।

युग-युग का एकान्त प्रहरी जीर्ण-शीर्ण हो गया हिमालय,
सीमाएँ खुल गईं चतुर्दिक अब विदीर्ण हो गया हिमालय,
कोटि-कोटि संख्या में होंगे खड़े हमारे होनहार जब,
नया हिमालय आज बनेंगे नये वर्ष के नये जवान।

धरती धारण करती होगी हरा-भरा-सा नव परिधान,
नये-नये खलिहान बनेंगे जन-जन की आशा के प्राण,
घर-घर में खुशियाली होगी, चमकेंगे चेहरे लोगों के,
मिट्टी से सोना उपजाएँ नये वर्ष के नये किसान।

जब भविष्य के सपने छलकें बच्चों की निर्मल आँखों में,
बढ़ते जायें छोटे-से पग जग की नई-नई राहों में,
ज्ञान और विज्ञान करेंगे अर्जित-संचित सभी भाँति वे,
वे ही तो एक रोज़ करेंगे नये राष्ट्र का नव निर्माण।

प्यासा नहीं रक्त का होगा नये वर्ष में कोई भी अब,
कोई विग्रह कभी न होगा, द्वेष न होगा कोई भी अब,
नहीं किसी की माँग पूछेगी, और न सूनी होगी गोद,
शान्ति और सौहार्द्र बनेंगे नये वर्ष का नया विधान।

मंगलमय भावना सभी की, मंगलमय हों सभी मनोरथ,
मंगलमय कामना सभी की, मंगलमय हो जीवन का पथ,
नर के कंठ-कंठ से मंगल, नारी कंठ से मंगल के स्वर,
मंगल करें सभी मिलजुलकर, नये वर्ष का नव आह्वान।

प्राणों को आलोकित कर दे नये वर्ष का नया विहान!

❐

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा

श्यामलाल गुप्त 'पार्षद'

(जन्म: १८९३ निधन: १९७९)

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।
सदा शक्ति सरसाने वाला,
प्रेम-सुधा बरसाने वाला,
वीरों को हर्षाने वाला,
मातृ-भूमि का तन-मन सारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।
इस झण्डे के नीचे निर्भय,
रहें स्वाधीन हम अविचल निश्चय,
बोलो भारत माता की जय,
स्वतन्त्रता हो ध्येय हमारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।
आओ, प्यारे वीरो! आओ,
देश-धर्म पर बलि बलि जाओ,
एक साथ सब मिलकर गाओ,
प्यारा भारत देश हमारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।।
इसकी शान न जाने पाए,
चाहे जान भले ही जाए,
विश्व-विजय करके दिखलाएँ,
तब होवे प्रण पूर्ण हमारा।
झण्डा ऊँचा रहे हमारा।
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा।
(रचनाकाल : १९२४)

❐

ग़ज़ल

रमेश तैलंग

o

डूब जाने को कई बार मन मचलता है।
चाहने से भी मगर कौन यहाँ मरता है?
ज़िंदगी इसलिए हर रोज़ जिये जाते हैं,
न चुकाओ तो क़र्ज़ और ज़्यादा बढ़ता है।
कभी बेचैनी में आँखों की नींद उड़ती है,
तो कभी रंज में दामन सुलगने लगता है।
सितारे फूल हैं फ़लक के, खुशी देते हैं,
सितारों से किसी का पेट कहाँ भरता है।
ज़रा सी बात है, दिल को समझ नहीं आती,
पुराने ज़ख्म को भरने में वक्त लगता है।

o

ठिठक के रुक गए हैं क्यों कदम पता ही नहीं
ये ज़िंदगी है या कोई भरम पता ही नहीं।
गुज़र गई है कितनी और कितनी है बाकी
ये सोच होती नहीं क्यों खतम पता ही नहीं।
कहाँ पे' छूट गए दुनिया के संगी-साथी
कहाँ पे' टूट गई हर क़सम पता ही नहीं।
न कोई माल-मता, न कोई अंगड़-खंगड़,
है दिल पे कौन-सा फिर बोझे ग़म पता ही नहीं।
सिवाय मौत के अब इंतज़ार है किसका
यहाँ हो और कोई भी सनम पता ही नहीं।

❐

संपर्क: 09211688748

अखिलेश तिवारी

o

रोज़ बढ़ती जा रही इन खाइयों का क्या करें
भीड़ में उगती हुई तन्हाइयों का क्या करें
एक मौसम भूख का जीते रहे जो उम्र भर
वो मचलती रुत, जवाँ पुरवाइयों का क्या करें
हुक्मरानी हर तरफ बौनों की , उनका ही हुजूम
हम ये अपने क़द की इन ऊँचाइयों का क्या करें
नाज़ तैराकी पे अपनी कम न था हमको मगर
नरगिसी आँखों की उन गहराइयों का क्या करें
माँगती हैं मुझसे ही जो मेरे होने का सबूत
बदगुमाँ अपनी ही इन परछाइयों का क्या करें

o

इस क़दर उलझे रहे हम अपने कारोबार में
फूल, तितली, चाँद, तारे बस पढ़े अख़बार में
अक़्ल हावी हो रही है इस क़दर एहसास पर
ख़ुश्बुओं की वजह ढूँढूँ, फूल की महकार में
दर्द की वो ही घटायें बेदिली की वो ही धूप
एक ही मौसम यहाँ है छत, गली, घर द्वार में
हादिसा कह लें इसे या है महज़ ये इत्तिफ़ाक़
एक शीशागर रहा हूँ पत्थरों की मार में
उम्र भर चेहरे बदलकर उसने यूँ अभिनय किया
खो दिया अपना ही चेहरा चेहरों के अंबार में

❐

संपर्क : 094640434278

अशोक मिज़ाज

o

एक मुद्दत से मेरी आँखों में ठहरा पानी
घर बना ले न कहीं दिल में ग़मों का पानी
दिल से निकली हुई आहें भी बनेंगी बादल
एक दिन टूट के बरसेगा ये जमता पानी
क़तरे क़तरे की ज़रूरत है अभी गुलशन को
और सड़कों पे बहा करता है बेजा पानी
अपने महलों के दरीचों से न देखा तुमने
मेरे मिट्टी के घरौंदे पे बरसता पानी
उसको महसूस नहीं होगी मुक़द्दर की जलन
जिस पे बरसा हो तेरे रहमो करम का पानी

o

इक तीर एक पक्षी के दिल में अटक गया
निकली जो मुँह से आह तो पत्थर चटक गया
कहते हैं ये ग़ज़ल है उसी दर्द की कराह
जंगल की झाड़ियों में हिरन जब अटक गया
दुनिया में सबसे ऊँचा है लफ़्ज़ों का ये पहाड़
कोशिश हज़ार करके कलमकार थक गया
मुझको शिकम की आग ने ज़िंदा जला दिया
ग़ुरबत की आँच में मेरा बच्चा भी पक गया
कोशिश भी तोड़ने की बहुत की गयी मिज़ाज
लेकिन ये क्या कि शीशे से शीशा चिपक गया

❐

संपर्क : 09026346785

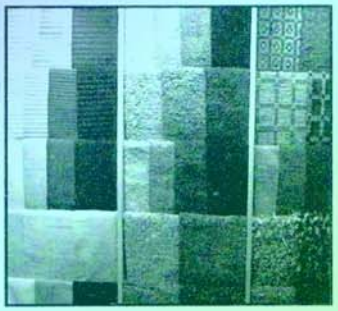

BEST DEALS FLOORING
Residential & Commercial
Free Delivery Under Pad Installation
Residential Commercial Industrial Motels & Restaurants
Free Shop at Home Service Call: 416-292-6248
WE ALSO SUPPLY
• Base Boards • Quater Rounds • Mouldings • Custom Stairs • All kinds of Trims • Carpet Binding Available
FREE - Installation - Under Padding - Delivery
Call: RAJ OR GARY 416-292-6248
130 Dynamic Drive, Unit #21, Scarborough, ON M1V 5C9
Middlefield Rd.
McNicoll Ave.
130 Dynamic Dr. Unit 21
Dynamic Dr.
Passmore Ave.
Steeles Ave. E.
Markham Rd.
Custom Blinds • Ciramic Tiles • Hall Runner
Direct: 416-953-6233
Office: 905-201-9977
HomeLife/Future Realty Inc., Brockerage
Independently Owned and Operated
HOMELIFE HIGHER STANDARDS
Jaswinder Saran
Sales Representative
205-7 Eastvale Dr., Markham, ON L3S 4N8
Highest Standard Agents...Highest Results!...
REALTOR
MLS MULTIPLE LISTING SERVICE

उत्तर-आधुनिक नारीवाद

डॉ. रेनू यादव

'सास का गट्ठर गट्ठर है, ननद का झब्बा झूलता है।

जब गगन में दीयना बरता है, तब अँगन में मीरगा चरता है।।'

यह कहावत गरीबी के संदर्भ में है, किन्तु पाश्चात्य के अनुकरण के संदर्भ में देखा जाए तो भारतीयों पर सटीक बैठता है। पाश्चात्य में जैसे ही नई विचारों का सुनगुन होता है, वैसे ही हम भारतीय सोचने लगते हैं कि हमारे वहाँ भी वैसा ही होना चाहिए और बाद में हम कहने लग जाते हैं कि यह अवधारणा पाश्चात्य से आई है। इससे कहीं न कहीं 'चिराग तले अँधेरा' चरितार्थ होती है। सत्य तो यह है कि हम अपने इतिहास को बार-बार खँगाल तो रहे हैं, पर उसे मानना नहीं चाहते।

सत्ता चौखट के अंदर वैदिककाल से लेकर अब तक स्त्रियों ने न जाने कितने विरोध और विद्रोह किए, पर उसे हम स्त्री-मुक्ति आंदोलन में सम्मिलित नहीं कर सकते। क्योंकि उस समय किसी ने स्त्री-मुक्ति आंदोलन, नारीवाद अथवा स्त्री-विमर्श का नाम नहीं दिया था और न ही स्त्री-मुक्ति आंदोलन के लिए संघर्ष होता था, वह संघर्ष तो समस्याओं या लगातार हो रहे शोषण से मुक्ति के लिए था। फिर प्रश्न उठता है कि स्त्री-विमर्श है क्या ?

स्त्री के विषय में उसके सुख-सुविधाओं से लेकर प्रत्येक समस्याओं के परिप्रेक्ष्य में ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सूक्ष्म से सूक्ष्मतम चिंतन-मनन कर अस्वस्थ दृष्टिकोणों को स्वस्थता प्रदान करना क्या स्त्री-विमर्श नहीं ? भले ही गार्गी, रोमषा आदि वैदिक नारियों ने मुक्ति के नाम पर न संघर्ष किया हो, पर सर का धड़ से अलग होने की धमकी मन को आंदोलित करती ही है। भले ही सीता ने रो-धोकर त्याज्य जीवन जिया हो पर भगवान् कहे जाने वाले जिस राम ने उनका इतना अपमान किया ऐसे पति के पास वापस जाने की अपेक्षा मृत्यु को गले लगाना क्या विरोध नहीं ? जबकि देखा जाय तो शूर्पणखा हिम्मती थी, प्रेम निवेदन का उत्तर नाक कटवाना तो नहीं हो सकता! परिणामत: युद्ध। महाभारत में द्रौपदी के अपमान का बदला सर्वविदित ही है।

थेरियों गाथाओं का दर्द कहें या भक्ति काल में नारियों का ईश्वर में अद्भुत समर्पण, मूक स्त्री-त्रासदी की गाथा ही तो है। प्रसिद्ध महिला साहित्यकारों में भक्तिकाल की मीरा और छायावादी महादेवी वर्मा आजीवन विद्रोहिणी रहीं। उनके समय में स्त्री-मुक्ति आंदोलन जैसा कोई नाम नहीं था, अन्यथा वे दोनों अपने निजी जीवन में लिए गए फैसलों के कारण उग्र अथवा कट्टरपंथी नारीवाद की प्रमुख नायिकाएँ होतीं।

नारीवाद उदारवादी, उग्र अथवा कट्टरपंथी, मनोविश्लेषणवादी, मार्क्सवादी तथा समाजवादी से होते हुए उत्तर-आधुनिक नारीवाद तक अनेक उतार-चढ़ावों के साथ सफर तय किया। सभी धाराओं की अपनी-अपनी विशेषता रही, किन्तु सभी धाराओं का समन्वय उत्तर-आधुनिक नारीवाद में ही दृष्टिगत होता है। आज उत्तर-आधुनिक नारीवाद सत्ता की ओरियानी के नीचे आ चुका है, ऐसी स्थिति में स्त्री पूरी तरह से न तो घर के अंदर है न बाहर, न मुक्त है और न ही पराधीन। यह कौन सा अंतर्द्वंद्व है कि गाँवों में स्थिति जस की तस है और शहरीकरण को लेकर हम व्यर्थ की उछल-कूद करते रहते हैं !!

लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यह नारीवाद अपने पूर्ववत् सास रूपी नारीवादी विचारधाराओं की संकुचित गाँठ को फेंककर बचे हुए अच्छे कपड़ों से ननद के झब्बे पर पैबंद लगाने में माहिर है। आज ये गगन में दीयना बरने का इंतज़ार नहीं कर रहा, बल्कि वे स्वयं ज्योति जलाना जानता है, और यही नहीं यह सिर्फ घर में खाना परोसकर मीरगों का पेट नहीं पाल रहा बल्कि घर के बाहर भी अनेक मीरगों के जीने की उम्मीद है।

आज उत्तर-आधुनिक नारीवाद के व्यापक पटल पर स्त्री-विमर्श और पुरुष-विमर्श का अनोखा क्षितिज दिखाई देने लगा है। क्या यह मात्र समता, समानता और सद्भावना जैसे प्रजातांत्रिक मूल्यों का ध्रुवीकरण है या फिर व्यक्ति-सत्य के साथ समष्टि-सत्य का समागम। एक ओर जहाँ अत्याचारों, व्याभिचारों का स्त्रियाँ पुरज़ोर विरोध कर रही हैं वहीं दूसरी ओर उत्तरआधुनिक नारीवाद उग्र नारीवादी विचाराधारा के विपरीत परिवार, प्रजनन और प्रेम की ओर लौट आया है। उग्र या कट्टरपंथी नारीवाद

के 'इमेजेज ऑफ विमेन' का सिद्धांत विवाह और मातृत्व से मुक्ति से उत्तर-आधुनिक नारीवाद सहमत नहीं है। शुलमिथ फायरस्टोन के 'गर्भ जैसे फिजूल अंग को काटकर फेंकने' जैसे विचारों का यह घोर विरोधी है। उत्तर आधुनिक महिला साहित्यकारों का मानना है कि स्त्री-पुरूष एक दूसरे के पूरक हैं इसलिए विवाह, मातृत्व और परिवार सृष्टि के विकास में सहायक है न कि बाधक।

कृष्णा सोबती, रमणिका गुप्ता, मैत्रेयी पुष्पा, अनामिका, कात्यायनी, सुशीला टाकभौरे आदि महिला साहित्यकारों के साहित्य में प्रेम, परिवार और प्रजनन का महत्त्वपूर्ण स्थान है और वे एक ऐसे सूरज को जन्म देना चाहती हैं कि जो पूरे विश्व को प्रकाशित कर सके।

जहाँ एक ओर विरोध है वहीं दूसरी ओर अपने पूर्ववत् नारीवाद के कुछ विचारधारा से सहमत भी है। सिमोन द बोउवार के अनुसार 'स्त्री स्त्री पैदा नहीं होती, स्त्री बना दी जाती है' को उत्तर-आधुनिक नारीवाद ने समझा तथा उदारवादी नारीवाद के जीवशास्त्रीय समानताओं एवं विषमताओं को समझते हुए अपना कदम आगे बढ़ाया। मनोविश्लेषणवादी नारीवाद के अंतर्गत यह नारीवाद लिंग की अवधारणाओं को तोड़ता है तथा स्त्री की निष्क्रियता को खारिज करता है तथा इरिगेरे के सेक्स संबंधी सिद्धांतों से सहमति रखता है, मार्क्सवादी और समाजवादी नारीवाद के श्रम तथा अर्थ के सिद्धांतों का यह हृदय से स्वागत करता है और अपनी अनुभूतियों को ठोस तथा स्थिर रूप प्रदान करता है। यह अपने सिद्धांतों को मूल्यों से जोड़कर स्त्रीवाद को एक नया आयाम प्रदान करता है। ये मूल्य कहीं अलग से नहीं आये हैं; बल्कि जो मूल्य समता रूपी दर्पण में धुँधला हो गया था, उसे ही झाड़-पोंछकर साफ़ किया तथा अब तक चले आ रहे सत्ताधारियों द्वारा निर्धारित जीवन-मूल्यों पर नई दृष्टि से चिंतन-मनन किया।

कदाचित् यही कारण है कि उत्तर-आधुनिक नारीवाद पितृसत्ता का स्थानांन्तरण मातृसत्ता में नहीं करना चाहता; बल्कि समानता में करना चाहता है। यह नारीवाद समता, समानता और सद्भावना आदि प्रजातांत्रिक मूल्यों के लिए संघर्षरत तो है ही, लेकिन इसका प्रमुख लक्ष्य मानवीय मूल्य है।

❐

renuyadav0584@gmail.com

लघुकथा

ये लोग

उर्मि कृष्ण

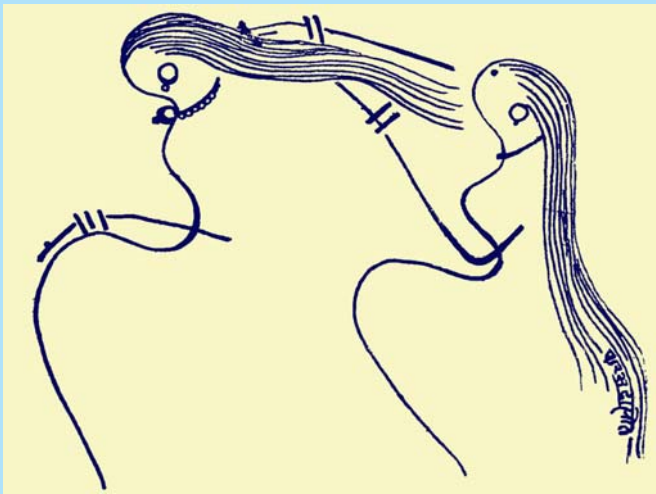

मैं अपना बिल लेकर पहुँचा तो वे मज़दूरों की छुट्टी करके उनका हिसाब निपटा रहे थे, आख़िर मज़दूर से उनकी काफी बहस हुई। वह अब तक की पाँच दिहाड़ियों के पूरे पैसे माँग रहा था, जबकि वे एक दिहाड़ी के पैसे रोके रखने पर अटल थे। मज़दूर का तर्क था कि उसे घर पैसे भेजने हैं। चिट्ठी आई है, बच्चा बीमार है। अंत में वह चार दिहाड़ी के पैसे लेकर चला गया।

मेरा बिल देखते हुए बोले 'तुम इन लोगों को नहीं जानते। इनका कोई दीन ईमान नहीं है। पूरे पैसे दे देता तो यह कल शक्ल न दिखाता। फिर नया मज़दूर ढूँढ़ो, उससे माथा पच्ची नए सिरे से..... इसीलिए।' इतने में देखा कि वही मजदूर वापस आ रहा है। आकर बोला 'बाबूजी, आपने फालतू रकम दे दी। दस के बजाय पचास का नोट। हम राशन वाले को पैसे देने लगे तो देखा, लीजिए।'

उन्होंने फुर्ती से उसके हाथ से नोट झपट लिया और दस का नोट उसे देते हुए बोला 'अरे रामदीन, तू अपना खास आदमी है। हमसे बेईमानी कैसे कर सकता है, तो हमने भी ध्यान से नहीं गिना। याद रख, बरकत मेहनत की कमाई से होती है। ईमान खोकर।'

रामदीन चला गया तो वे बोले 'मैंने कहा न कि तुम इन लोगों को नहीं जानते। निरे जाहिल हैं। भोंदू और उजबक। हाथ आई लक्ष्मी को दुत्कारने का कोई तुक है भला, इसीलिए ये लोग फड़तूस रहते हैं हमेशा, ये कभी नहीं पनपेंगे।'

❐

ज्यों ज्यों बूड़ें श्याम रंग

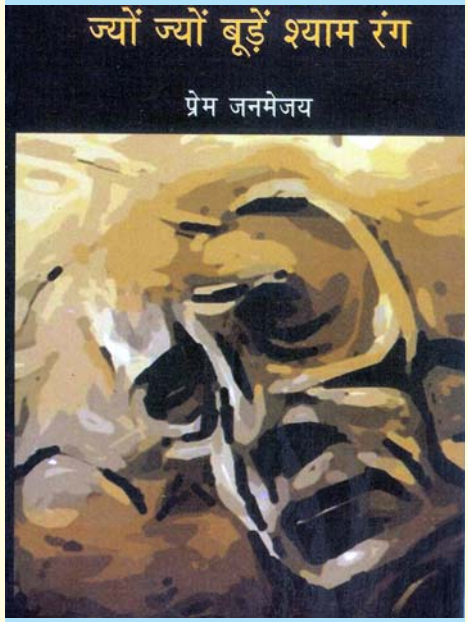

पुस्तक: ज्यों ज्यों बूड़ें श्याम रंग
व्यंग्य संग्रह
लेखक: प्रेम जनमेजय
प्रकाशक -सामयिक बुक्स
३३२०-२१, जटवाड़ा, दरियागंज
एन.एस.मार्ग, नई दिल्ली-११०००२
पृष्ठ: १४४
मूल्य: २५०/-

उलटवासियों की सधाई के प्रयोग

राजेंद्र सहगल

व्यंग्य की दुनिया में जैसे ही हम उतरते हैं; त्यों ही एक बात छुपा-फिराकर सामने आती है कि व्यंग्यकार ऐसी बेचैन आत्मा है; जो पैदाइशी असंतुष्ट जीव होता है। वह खुद तो आराम से बैठता नहीं है और दूसरों को भी आराम से लंबी पसारने की सुविधा नहीं देता। 'दुखिया दास कबीर है जागे और रोवे' की तर्ज पर यह व्यंग्यकार की ही नज़र होती है जो तथाकथित प्रगति, विकास, लोक-लुभावन नारों, राष्ट्रप्रेम के नाम पर गोरखधंधों, धांधले बाजियों के अनवरत छलावों की असलियत को न सिर्फ पहचानता है बल्कि इन दुरभिसंधियों की तह तक पहुँचने के लिए सत्तागत चालों-कुचालों, व्यक्ति की आदिम शक्तियों व समाज से उसके संश्लिष्ट रिश्तों की बारीक बुनावट तथा राजनीतिक षड्यंत्रों के खेल को उजागर करने की ज़िद पालता है। दुनिया में शायद ही कोई ऐसा समाज होगा; जिसमें व्यंग्य के लिए उर्वर भूमि या संभावनाएँ अंतर्निहित न हों। व्यंग्य चेतना के प्रति अपने इसी एकानिष्ठ भाव को पालने-पोसने एवं परिपुष्ट करने के लिए अपनी समस्त उर्जा के लिए सजग प्रयत्नशील प्रतिष्ठित व्यंग्यकार, व्यंग्यालोचक प्रेम जनमेजय का व्यंग्य संग्रह 'ज्यों ज्यों बूड़ें श्याम रंग' उनकी इस दिशा में निरंतर सक्रिय बने रहने के नवीनतम उदाहरण के रूप में सामने आया है।

व्यंग्य को विधा के रूप में स्थापित करने और उसे तदानुरूप मान्यता दिलाने के लिए प्रयत्नशील प्रेम जनमेजय खुद तो व्यंग्य को ओढ़ने-बिछाने और जीने का उद्यम करते ही हैं साथ ही नवोदित व्यंग्यकारों को करीब-करीब 'मास्टर' की तरह फटकारते-सहलाते हुए व्यंग्य की सार्थकता को बचाए रखने की मूल चिंता को ही केन्द्र में रखते हैं। उनके व्यक्तित्व की यही जीवटता और वैशिष्ट्य उनके इस संग्रह की रचनाओं में भी परिलक्षित हुआ है। 'कदम कदम भुनभुनाए जा' व्यंग्य रचना के जरिए व्यक्ति की इसी काहिली और महत्वाकांक्षी व्यक्ति के सब कुछ अपने अनुकूल न होने पर कुनमुनाने-भुनभुनाने की वृत्ति पर छींटाकशी करते हुए कहते हैं 'आज के युग में बड़ा ईमानदार या फिर छोटा ईमानदार भुनभुनाहट के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता। छोटा ईमानदार तो कुछ देर भुनभुनाता है और थककर बेईमान हो जाता है।' चौतरफा अराजक माहौल में भुनभुनाना मानो कमोबेश हर व्यक्ति की अनिवार्य नियति बनती जा रही है। दरअसल वे छोटे ईमानदार और बड़े ईमानदार के मूलभूत अंतर को बारीकी से साफ़ करते हुए उस नैतिक तथ्य की ओर ही इशारा कर रहे हैं।

ईमानदारी भले ही सार्वजनिक जीवन में अपनी अर्थवत्ता साबित करती है लेकिन वस्तुत: आंतरिक ईमानदारी या वैयक्तिक ईमानदारी ही सर्वोपरि है; जिसके लिए हमें बाहरी स्रोतों से प्रमाण-पत्र जुटाने की आवश्यकता नहीं होती। इसी तर्क के बहाने से राजनीति, मीडिया, साहित्य एवं बुद्धिजीवियों के सार्वजनिक तथा वैयक्तिक छलछद्म को भी निशाने पर ले आने से नहीं चूकते।

बेहतर भविष्य के लिए लालायित लेकिन वर्तमान में थपेड़े सहने को अभिशप्त भोली जनता का आने वाले साल के प्रति उत्साहित बने रहने की मुद्रा को 'देख आठ के ठाठ' में नववर्ष की शुभकामना को लपकने की प्रवृत्ति का जायजा लेते हुए लिखते हैं- 'नववर्ष की शुभकामना दी तो उसने ऐसे लपक लीं जैसे साहित्य सेवी पुरस्कार लपकते हैं, भ्रष्टाचारी भ्रष्टाचार लपकता है, पुलिसिया अपराध लपकता है और नेता चुनाव के समय मतदाता को लपकता है।' बेशक बाज़ार के दबाव में अब आवश्यकता आविष्कार की जननी नहीं बल्कि आविष्कार आवश्यकता की जननी बन गया है। लोगों को उधार की आदत डाल दो बाद में कमाने की जुगत भी भिड़ा ही लेंगे 'अथ क्रेडिटआय नम:' में इसी प्रवृति की गिरफ्त की अभिशप्तता को सामने लाया गया है; जहाँ बड़ी-बड़ी कंपनियाँ कार्ड बनवाने व उधार उपलब्ध करवाने के लिए बड़े-बड़े लुभावने प्रलोभन व इस कारोबार को ग्लेमरस रंग देने के लिए महिला कर्मचारियों को इस्तेमाल से नहीं चूकती और स्वाभाविक मानवीय कमज़ोरियों के दोहन से अपने कारोबार को फैलाती हैं। इस संग्रह की रचनाएँ विषय के चयन की दृष्टि से भले ही सदैव नवीनता की आग्रही न भी रही हो तथापि विवेच्य विषय पर अपनी मौलिक दृष्टि से प्रहार करते हुए तरोताज़गी बनाए रखना इस संग्रह की कई रचनाओं में साफ़ महसूस किया जा सकता हैं जैसे कि भ्रष्टाचार के सर्वव्यापी विकराल रूप को लेकर हम कितना भी हो-हल्ला क्यों न मचाते हो लेकिन सार्वजनिक जीवन में इसके प्रति आधी-अधूरी स्वीकृति हम सभी को कठघरे में खड़ा करती है और इससे असहमति जताना बिल्ली के सामने कबूतर की तरह आँखें मूँदना होगा। 'अपनी शरण दिलाओ, भ्रष्टाचार जी' लेख में वे ऐसे ही ऊपर से साधरण लगने वाले प्रसंगों के जरिए इस विद्रूप का जायजा लेते हैं; जिससे हम सब कमोबेश किसी न

किसी स्तर पर शिकार है। राजनीति की दलदल में नैतिकता की बात पर अब ठीक से हँसी भी नहीं आती इसीलिए 'आत्मा की आवाज़' में वे कहते हैं- 'कबीर के समय में माया महाठगिनी थी अब आत्मा ठगिनी है' आगे तथाकथित प्रजातंत्र की पोल खोलते हुए कहते हैं- 'पाँच साल में एकाध बार आत्मा की आवाज़ सुन लेना ही तो प्रजातंत्र है।'

सर्वथा नए-नए विषयों के चयन के प्रति प्रेम जनमेजय सदैव तत्पर न भी रहे हों या सदैव नई ज़मीन तोड़ने का प्रबल आग्रह भले ही उस हद तक या उस मायने में पूरा प्रखरता के साथ आना बाकी है जिसकी अपेक्षा एक वरिष्ठ व्यंग्यकार से बराबर बनी रहती है लेकिन यह उनके व्यंग्यकार का ही वैशिष्टय है कि वे हमेशा बौद्धिकता के घटाटोप से बचते हैं और इसके बावजूद व्यक्ति और समाज के जटिल एवं संश्लिष्ट अन्तर्सम्बन्धों को अपनी सरल-सरस शैली के रचाव से विश्लेषित करते हुए पाठक को चमत्कृत करने का माद्दा रखते हैं। वे बाज़ारवादी खरीद फ़रोख्त के इस माहौल में साहित्य और साहित्यकार के बदलते सरोकारों पर अँगुली रखते हैं और उन जटिल बिन्दुओं को पकड़ने की कोशिश करते हैं जिसके चलते सब कुछ बिकाऊ होता गया है और लेखक वर्ग भी किसी न किसी स्तर पर इस विचलन का शिकार हुआ है। अपने कथ्य के निर्वहण में कला-कौशल की यह साधना उनके व्यंग्य लेख 'राम वनवास का सीधा प्रसारण' में निखर कर सामने आती हैं। पौराणिक कथा सूत्रों के बीच मौजूदा चुनावी सरगर्मियों ने मुद्दे की तलाश में भटकती राजनीतिक पार्टियों के तानेबाने को कुछ इस तरह से गूँथा गया है कि पार्टियों की अवसरवादिता-खोखलेपन तथा लोक-लुभावन नारों की अर्थहीनता तो उजागर होती ही है साथ ही चुनावी माहौल में जनता के प्रति अपने कर्त्तव्यों की अनदेखी करते इलेक्ट्रानिक मीडिया के सनसनीखेज, हैरतअंगेज कारनामों से खुलासो की भरमार से ही टीआरपी बढ़ाने के चक्कर में घोर लिप्सा से परिपूर्ण उनके गैर-ज़िम्मेदाराना वृत्तियों को भी उद्घाटित किया गया। बिना किसी अतिरेक व अतिरंजना का सहारा लिए यहाँ व्यंग्यकार पौराणिक चरित्रों घटनाओं के हवाले से मौजूदा संदर्भों का मनमाना इस्तेमाल नहीं करता बल्कि उतनी ही चीर-फाड़ करता है; जिससे सामयिक राजनीतिक, धार्मिक प्रवृत्तियों की असलियत को उभारा जा सके। पौराणिक कथा व चरित्रों के माध्यम से उनके मूल स्वरूप से बिना कोई छेड़छाड़ किए समसामायिकता के आग्रहों को फलीभूत करने के लिए जिस संयम व वैज्ञानिक आकार की अपेक्षा होती है, उसकी अनुगूँज इस रचना की विशिष्ट उपलब्धि कही जा सकती है।

उलटवासियों के सशक्त इस्तेमाल से भरे इस संग्रह की कुछ रचनाएँ अपनी चमक से गहरे प्रभावित करती हैं। अपने इसी कला-कौशल से वे कहीं बाज़ारवादी शक्तियों के चंगुल में फँसी साहित्यिक बिरादरी के विचलनों संभ्रमों को खँगालते हैं तो कहीं ज़रूरत के हिसाब से चौतरफा फैली जड़ताओं क्षुद्रताओं को क्षत-विक्षत करने के लिए अपने औज़ारों को और भी नुकीला व प्रहारात्मक बनाने में भी गुरेज नहीं करते। 'अँधेरों के पक्ष में उजाला' व्यंग्य लेख उनकी इसी मारकता का श्रेष्ठ उदाहरण है; जहाँ उजाले पर तरस खा क्रूर अमानवीय ताकतें उसे अपनी शर्तों पर ही अभयदान देती है। तभी तो महँगाई का जिन्न राजा को विचलित करने के बजाए आश्वस्त करता है। 'गरीब तो महँगाई की चिंता का ताप फैलाता है तथा आप जैसे श्रेष्ठी महँगाई की चिंता कर गरीबी के ताप से स्वयं को दूर रखने का मंत्र साधते हैं।' इसी तर्क को विस्तार देने के उपक्रम में 'महँगाई का बेताल और पुरस्कार का राजन' में साधते हुए आमजन की इस त्रासदी को 'लो फिर' में जनता के चक्करघिन्नी स्वरूप को उभारते हैं; जिसके चलते यह हर जलालत-जहालत

को हँसी खुशी या मरते-कुढ़ते सहने में माहिर होता गया है और अंततोगत्वा उसकी जीवन शैली का यही मूलमंत्र तथाकथित प्रजातंत्र की सफलता का रहस्य हो जाता है।

प्रेम जनमेजय व्यंग्य को लोकप्रिय व संप्रेषणीय बनाने के लिए हमेशा सजग व प्रयत्नशील रहे हैं लेकिन इसे साधने के लिए वे सस्ती जुमलेबाजी व सायास हास्य ठूँसने के पक्षधर कभी नहीं रहे हैं। इस संग्रह की रचनाओं में भी वे अपनी इस प्रतिबद्धता पर कायम रहे हैं और इसी कारण वे वर्णित विषयों को कई कोणों से जाँचते परखते हुए अंतर्निहित विद्रूपताओं को अपनी मौलिक विकसित शैली से उभारते हैं। आप्त वाक्यों से भरपूर इस संग्रह के कुछ नमूने इसे साबित करते हैं जैसे 'हमें कोई खरीदने को तैयार नहीं है और हम नारा लगा रहे हैं कि हम बिकने को तैयार नहीं हैं; बदल डालो साहित्य की दुनिया बिना मोलभाव किए माल खरीद लो तो लगता है लूट लिया'; 'अँधेरे के पक्ष में उजाला विदेशों में अवतार लेने या कापीराइट प्रभु के पास नहीं है' ; 'प्रभु दौरे पर, सत्ताधरी को पद रहित होने की बात सुनते ही निरर्थक जीवन के दु:स्वप्न आने लगते हैं' ; महँगाई का बेताल और पुरस्कार का राजनद्ध, यत्र- तत्र बिखरे मिल जाएँगे, जिससे रचना की कसावट और भी निखर जाती है।

शरद जोशी ने कहीं लिखा है कि रोते हुए आदमी को ध्यान से देखना कि उसके आँसू वास्तविक रूप से निकल रहे हैं या वह तुम्हें द्रवित करने की कोशिश में हैं चूँकि सचमुच के आँसू तो अकेले में ही बहाए जाते हैं। बेशक इन व्यंग्यों से गुज़रते हुए बीच-बीच में झटके महसूस किए जा सकते हैं कि क्या वास्तव में सब कुछ इतना बेगाना पराया हो गया है कि उससे पार पाने का कोई रास्ता नहीं। ऐसा भी नहीं कि अपनी प्रखर व्यंग्य चेतना के बावजूद वे सभी रचनाओं में अपने आक्रामक तेवरों को भी बरकरार रख ही पाए हों। कुछेक रचनाओं में वे भी सपाटता या सतहीपन और कुछेक स्थलों पर दोहराव के भी शिकार हुए हैं; जिससे उनकी रचनाओं के उठान में अधबीच शैथिल्य या विचलन को भी महसूस किया जा सकता है; लेकिन इसे भी व्यंग्यकार का कला कौशल ही कहना होगा कि इस तरह की त्रुटियाँ रचना को दूसरी-तीसरी बार पढ़ने के बाद ही पकड़ा जा सकता है। लगातार व्यंग्य और केवल व्यंग्य लिखते रहकर भी सदैव कसावट बनाए रखना और कभी भी दोहराव या विचलन का शिकार न होना अग्रणी पंक्ति के व्यंग्यकारों के लिए भी हमेशा चुनौती बना रहा है। सच्चे और समर्पित व्यंग्यशिल्पी की यही पहचान होती है कि वह बासी या घिसपिट चुके विषयों पर फार्मूलाबद्ध तरीके से कलमघसीटी से बचते हुए अपने अनुभव जगत के दायरे में आने वाले विषयों को केंद्र में रखते हुए अपनी तंज को प्रामाणिक रंग देता है।

अपने व्यंग्य कार्य के प्रति पूरी तरह से प्रतिबद्ध इस संग्रह के लेखक द्वारा भूमिका में दिए गए वक्तव्य के अनुसार, निस्संदेह वे व्यंग्य लेखन में जल्दबाजी को सिरे से खारिज करते हैं। मात्रा की अपेक्षा गुणवत्ता के कायल होने की अपनी इसी सोच के तहत उन्होंने विषय चयन में न केवल सावधानी बरती है बल्कि उठाए गए विषयों के निर्वाह में वैचारिक ताजगी एवं कलात्मक अभिव्यक्ति कौशल का परिचय दिया है। इस प्रकार के वैशिष्ट्य से परिपूर्ण इस संग्रह की रचनाओं का सरसरी दृष्टि से पठन-पाठन निश्चित रूप से उनके प्रति अन्याय होगा और उसके मर्म तक पहुँचने में बाधक भी होगा।

अपनी व्यंग्य यात्रा में उनका वैचारिक ठोसपन एवं परिपक्वता उनकी अर्जित अभिव्यक्ति शैली की सरसता से कुछ इस प्रकार सामने आई है कि कहन की तत्परता और उत्कृष्टता तथा वैचारिक तारल्य पाठक की चेतना में स्वत: घुलने मिलने लगता है।

❐

Hindi Pracharni Sabha

(Non-Profit Charitable Organization)

Hindi Pracharini Sabha & Hindi Chetna ID No. 84016 0410 RR0001

'For Donation and Life Membership
we will provide a Tax Receipt'

Annual Subscription: $25.00 Canada and U.S.A.

Life Membership: $200.00

Donation: $

Method of Payment: Cheque, payable to "Hindi Pracharni Sabha"

सदस्यता शुल्क
(भारत में)
वार्षिक: 400 रुपये
दो वर्ष: 600 रुपये
पाँच वर्ष: 1500 रुपये
आजीवन: 3000 रुपये

Contact in Canada:
Hindi Pracharni Sabha
6 Larksmere Court
Markham,
Ontario L3R 3R1
Canada
(905)-475-7165
Fax: (905)-475-8667
e-mail: hindichetna@yahoo.ca

Contact in USA:
Dr. Sudha Om Dhingra
101 Guymon Court
Morrisville,
North Carolina
NC27560
USA
(919)-678-9056
e-mail: ceddlt@yahoo.com

Contact in India:
Pankaj Subeer
P.C. Lab
Samrat Complex Basement
Opp. Bus Stand
Sehore -466001, M.P. India
Phone: 07562-405545
Mobile: 09977855399
e-mail: subeerin@gmail.com

कमरा नंबर १०३

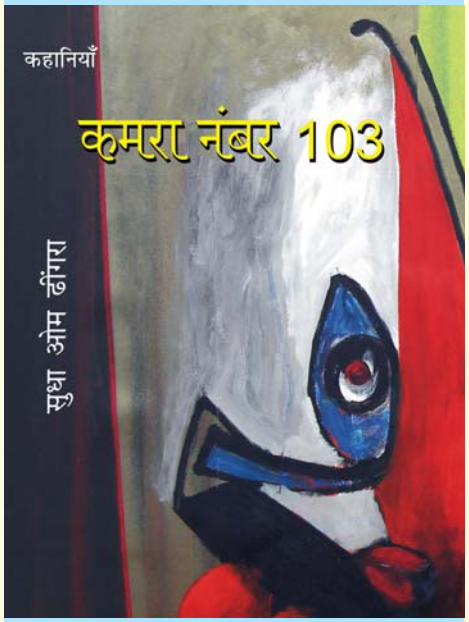

कमरा नंबर १०३ (कहानी संग्रह)
डॉ. सुधा ओम ढींगरा,
प्रकाशक :
हिंदी साहित्य निकेतन,
बिजनौर-२४६७०१
(उ प्र);
मूल्य- एक सौ पचास रुपये,
पृष्ठः ९६, संस्करण:२०१३

निरुपमा कपूर
urpmkapoor325@gmail.com

विषय -वैविध्य की ताज़गी से पूर्ण संकलन : 'कमरा नंबर १०३'

निरुपमा कपूर

कहानी मानव जीवन का प्रतिबिंब है; जो बड़े ही सशक्त ढंग से जीवन के छुए-अनछुए पहलुओं को मानव के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। डॉ.सुधा ओम ढींगरा की कहानियाँ अपने विषय वैविध्य के कारण स्वयं को भीड़ से अलग करती हैं, साथ ही कहानी के क्षेत्र में अपना अलग मुकाम स्थापित करती हैं। डॉ. सुधा ने भारतीय संस्कारों को आत्मसात् किया है, साथ ही अमेरिका की परिस्थितियाँ, वहाँ की संस्कृति और रहन-सहन के तरीके को भी अपनी बारीक नज़रों से परखा है। इसलिए 'कमरा नंबर १०३' की कहानियों में हम भारतीय संस्कृति और पाश्चात्य सभ्यता की तुलना मानसिक तौर पर करते रहते हैं। संकलन की प्रथम कहानी 'आग में गर्मी कम क्यों हैं' का विषय समलैंगिकता है; जिस पर कम लोगों ने ही कलम चलाई है। भारत में एक कहावत मशहूर है- 'जाके पैर न पड़े बिवाई, वह क्या जाने पीर पराई', इस कहानी में भी शेखर ने जेम्स के लिए साक्षी को धोखा दिया,तो उसे साक्षी का दर्द नहीं महसूस हुआ; लेकिन जब जेम्स उसे धोखा देता है, तो शेखर सहन नहीं कर पाता और आत्महत्या कर लेता है। यह कहानी पुरुषों की पत्नी के प्रति संवेदनहीनता को व्यक्त करती है। दूसरी कहानी 'और बाड़ बन गई' मानव स्वभाव की उत्सुकता को बयान करती हैं कि उनके पड़ोस में कौन नया परिवार रहने आया है। जब पारुल और मनु को पता चला है, बहुत बड़े व्यापारी ने किराये पर मकान किया है, वह बहुत ही कम घर पर रहता है, तो भारतीय पड़ोसी की चाहत, और उसे लेकर लिए गए स्वप्न चूर-चूर हो गए। 'कमरा नंबर १०३' माता-पिता के प्रति संतानों की संवेदनहीनता को दर्शाती है। विश्व की बढ़ती वृद्धों की संख्या अपने ही खून के रिश्तों को रंग बदलते हुए सहन कर रही है, तो 'वह कोई और थी' में अमेरिका की नागरिकता पाने के लिए अभिनंदन अपनी पत्नी सपना का शोषण सहता रहता है। सपना की उच्छृंखलता एवं उद्दंड स्वभाव की जिम्मेदारी लेते हुए सपना की माँ ने अभिनंदन से कहा 'सपना ने अमरीका के कल्चर को गलत तरीके से अपना लिया मुझे अफसोस है कि मैं सशक्त माँ बन कुछ वर्ष पहले खड़ी होती, जो मैं आज हूँ तो सपना ऐसी न होती। बस श्यामजी धीमा सुनते नहीं थे और मैं ऊँचा बोल नहीं पाई।' ये संवाद भारतीय स्त्रियों की दयनीय दशा को व्यक्त करते हुए तस्वीर का दूसरा रुख भी पेश करते हैं कि स्त्रियों की स्थिति कमोबेश हर जगह ऐसी ही है। 'दृश्य भ्रम' में डॉ. जशन का पात्र ऐसे व्यक्ति की भूमिका में है; जो अपनों ही द्वारा जाति प्रथा के दंश द्वारा डसा गया है, ऐसा दंश जिसे वह पूरी ज़िदगी ढोता रहा है और धीरे-धीरे एक मानसिक रोगी में परिवर्तित हो गया 'कुंठाओं से ग्रसित, अपनी बनाई सोच से पीड़ित, उद्वेलित, मानसिक यंत्रणा से हर क्षण मरते हुए, वह बस जी रहे हैं।' बड़ों के झूठ ने उनका जीवन नरक बना दिया। इस बात का जिक्र उन्होंने कहानी के अंत में इस संवाद से किया- 'दादीजी के एक झूठ ने मेरा जीवन तबाह कर दिया'- यह कहानी जाति प्रथा की मजबूत जड़ों को दर्शाती है। 'सूरज क्यों निकलता है' प्रेमचंद की कहानी कफ़न के पात्रों की याद दिलाती है। जेम्स और पीटर उन्हीं पात्रों का अमेरिकी प्रतिरूप लगते हैं। 'टारनेडो' में स्त्री की छठी इंद्रिय की प्रबलता को दर्शाया गया है, कैसे एक बेटी अपनी माँ के मित्र की बुरी नज़र से अपने को बचाती हुई अपने माँ-बेटी के रिश्ते को कुरबान कर देती है, यह कहानी भी अमेरिकन संस्कृति के उस रूप को दर्शाती है; जो हम भारतीय आत्मसात् नहीं कर सकते, हमारे यहाँ माँ और बच्चे का संबंध सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है। अपवादस्वरूप ही इस सम्बंध को गौण रूप प्रदान किया जा सकता है। डॉ. सुधा की ये कहानियाँ मानव मन को झंकृत करते हुए, संवेदनाओं को विचलित करती हुई प्रतीत होती हैं। विषयों की विविधता लिये हुए डॉ. सुधा ओम ढींगरा का यह संग्रह ताज़गीपूर्ण है व समकालीन कहानी लेखकों की भीड़ में लेखिका को अलग करती है और बार-बार संग्रह को पढ़ने के लिए मजबूर करती है।

❐

सहज सम्प्रेषणीय-लक्ष्य

नरेंद्र पुण्डरीक

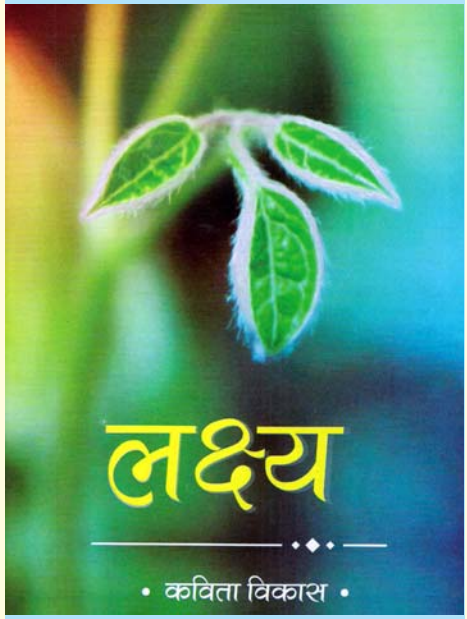

'लक्ष्य'(काव्य संकलन)
कवयित्री-कविता विकास
बसंती प्रकाशन, नई- दिल्ली

लक्ष्य कविता विकास का नया कविता संकलन है। कविताओं की भाषा सहज और सुबोध हैं; जिससे सामान्य जन सहज ही इन कविताओं को ग्रहण कर सकता है। कविता ने अपनी सहज अनुभूतियों को इस कविताओं में अभिव्यक्त किया है। ज़्यादातर कविताएँ लय और तुक में हुई हैं। परम्परागत छंद विधान के फेर में नहीं पड़ी हैं, न ज़बरदस्ती अतुकांत कविता के चक्कर में। अपने भावों को व्यक्त करने के लिए सहज लय और तुक को ही अपनी कविताओं के लिए अपनाया है। 'अतीत के आईने में निहारने को / जब स्वयं को सँवारती हूँ /कई झिलमिलाते परतों में माँ /तुम ही तुम नज़र आती हो' स्मृतियों में माँ का झिलमिलाना जीवन की यात्रा के बीच में सघन छाया की तरह होता है,जो हर व्यक्ति के जीवन – संघर्षों के बीच उसकी स्मृतियों में आता है, लेकिन रचनाकार उन स्मृतियों के सुखद-दुखद क्षणों को शब्द देकर रचना को जन्म देकर लोगों के बीच लाता है।

इसलिए रचनाकार स्रष्टा होता है जो अनुभूतियों को शब्द देकर उनकी नई सृष्टि करता है। बहुत लोग रचना रत रहते हैं लेकिन सबका लिखा,सबकी शब्द सृष्टि कविता नहीं होती। 'नव्यं ही काव्यं' जो अब तक लिखा नहीं गया, जिस अनुभूति को शब्द नहीं दिए जा सके लेकिन जब कोई रचनाकार उस अनुभूति को शब्द देकर सृजित करता है तो वहाँ पर वह कविता होती है। छंद, लय,तुक, ताल यह सब केवल उस नए का अलंकरण करते हैं। इनकी कुछ और पंक्तियाँ देखें 'बदलाव की बयार ऐसी मंज़र लाई कि आबाद नगरी बंज़र हो गई'। अनुभूतियों के नयेपन का अहसास जब किसी रचनाकार को हो जाता है तभी उसकी रचना की सार्थकता होती है। एक जगह पर वह कह उठती हैं, 'वसंत तुम केवल ऋतु चक्र नहीं,मेरे प्रतीक हो'। सहजता कविता में कहीं से लायी नहीं जाती, वह जीवन से आप से आप आती है। यह आप से आप आने वाला सहज भाव ही उसकी अनुभूति को, नए अहसास को बदल कर कविता में परिणित कर देता है। सहज शब्दों का रचाव अपने आप में काव्य वाशष्टया है; जो इन कविताओं को एक अतिरिक्तता प्रदान करती है,अनुभूति और अभिव्यक्ति को सहज सम्प्रेषणीय बनाये रखती है।

❐

प्रथम प्रयास-उन्मेष

भारतेंदु श्रीवास्तव

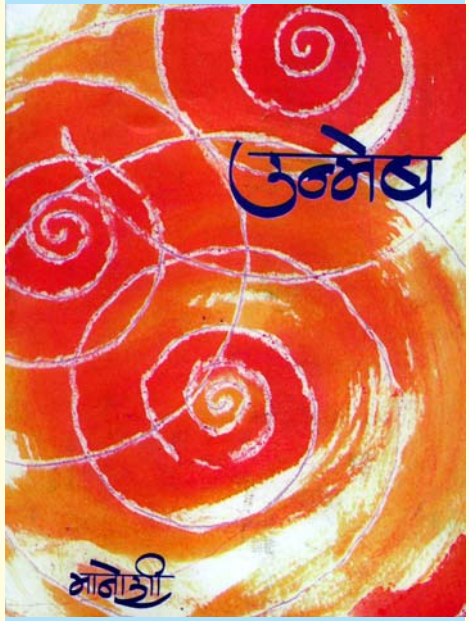

'उन्मेष' (काव्य संकलन)
कवयित्री-मानोशी
अंजुमन प्रकाशन, इलाहाबाद

मानोशी चटर्जी का प्रथम काव्य संकलन 'उन्मेष' हिन्दी साहित्य समाज, विशेषत: टोरांटो के हिन्दी साहित्य समाज के लिए एक मूल्यवान् निधि है। उन्मेष का अर्थ खिलने या खोलना तो है ही पर एक अर्थ हल्का सा प्रकाश भी है। जिस प्रकार सूर्योदय पर ऊषा की लालिमा के साथ प्रथम किरण शीतलता, मधुरता और प्रकाश का आभास कराती है, उसी प्रकार संभवत: कवि के चेतन अथवा अवचेतन से यह प्रेरणा आई हो कि प्रथम पुस्तक को उन्मेष की संज्ञा दी जाए।

112 पृष्ठ की इस पुस्तक में कविताएँ पृष्ठ 20 से आरंभ होती हैं और गीत, ग़ज़ल, मुक्तछंद, हाइकु, क्षणिका, और दोहों में वर्गीकृत है। 'पतझड़ की पगलाई धूप' से फागुन, वसंत, गर्मी, आदि प्रकृति की ऋतुओं का सुंदर काव्य चित्रण करते हुये कवयित्री अपने भारतीय परिवेश से जब विदेश आती हैं तो उनकी दुविधा 'लौट चल मन' में बड़े आकर्षक ढंग से वर्णित है। कालिदास के 'मेघदूत' में विरह का नारी हृदय विहग वृंद के साथ उड़कर प्रियजनों के पास परिचित वातावरण में जाना चाहता है। निम्न पद द्रष्टव्य है-विहगवृंद संग क्षितिज पार तू सुवर्ण रेखा स्पर्श करने/ बंधु घुलमिल जोड़ श्वेत पर चला कहाँ मन किसे हरने?/ स्वप्न बाँध अब किस झोली में नश्वर तारों की टोली में वेश आडंबर/ आलिंगन कर / क्या मिलता सब / लौट चल अब...

'कौन किसे कब रोक सका है' कविता का प्रथम पद अतिशय सटीक है- 'दर्प पतन का प्रथम घोष है / गिरने से पहले का इंगित, भाग्य ने जिस जगह बिठाया/ छिन जायेगा सब कुछ संचित, दो क्षण के इस जीवन में क्या/ द्वेष-द्वंद्व को सींच रहे हो, जिसने ठान लिया होगा फिर/ कौन उसे तब टोक सका है?' कवयित्री मानोशी प्रेम का अनेक रूपों में वर्णन करते हुए गीतों के पश्चात ग़ज़ल प्रस्तुत करती हैं।

कहने को तो वो मुझे अपनी निशानी दे गया /
मुझसे लेकर खुद मुझे अपनी कहानी दे गया।

बहुमुखी प्रतिभावती मानोशी छंदमुक्त, हाइकु, क्षणिकाएँ लिखती हुईं उन्मेष में दोहों में छंद का पूर्ण ज्ञान दर्शाती हैं। मानोशी बधाई की पात्र हैं; जिन्होंने टोरांटो का हिन्दी काव्य साहित्य समृद्ध किया है।

❐

हमसफ़र पत्रिकाएँ

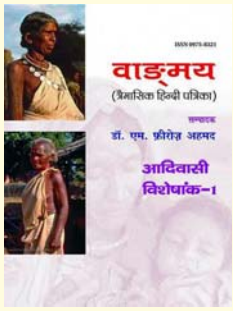

वाङ्मय

(त्रैमासिक हिन्दी पत्रिका) आदिवासी विशेषांक
संपादक- डॉ. एम. फ़िरोज़ अहमद
205-ओहाड रेसीडेंसी, पान वाली कोठी के पास, दूधपुर रोड, सिविल लाइंस, अलीगढ़
202002 मोबाइल 9044918670

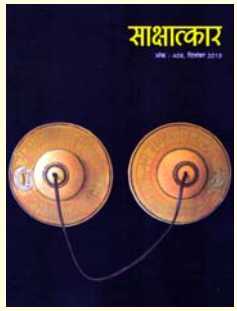

साक्षात्कार

दिसम्बर 2013 अंक
संपादक- त्रिभुवन शुक्ल
म. प्र. साहित्य अकादमी
मुल्ला रमूजी भवन
बाणगंगा चौराहा, भोपाल

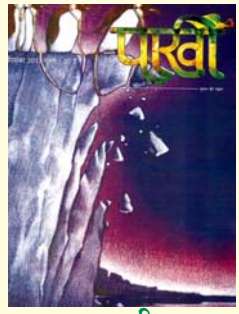

पाखी

सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
बी-१०७,
सेक्टर-६३
नोयडा-२०१३०३
गौतम बुद्ध नगर उत्तर प्रदेश

शोध दिशा

संपादक डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल
डॉ. मीना अग्रवाल
हिन्दी साहित्य निकेतन
१६ साहित्य विहार,
बिजनौर (उ.प्र.)२४६७०१

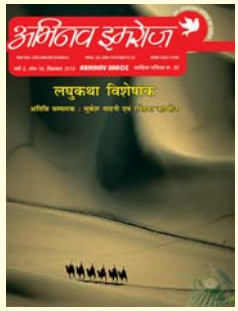

अभिनव इमरोज़

लघुकथा विशेषांक
अतिथि संपादक: सुकेश साहनी एवं रामेश्वर काम्बोज
संपादक--देवेन्द्र कुमार बहल
बी ३, ३२२३ वसंत कुञ्ज, नई दिल्ली-१००७०

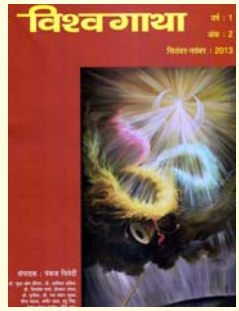

विश्वगाथा

संपादक -पंकज त्रिवेदी
ऊँ, गोकुलपार्क सोसायटी,
८० फीट रोड
सुरेन्द्र नगर-३६३००२
गुजरात

लमही

प्रधान संपादक - विजय राय
संपादक-ऋत्विक राय
३ / ३४३,
विवेक खंड, गोमती नगर,
लखनऊ-२२६०१०

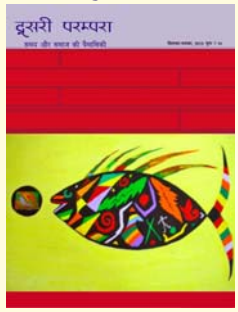

दूसरी परम्परा

सम्पादक - सुशील सिद्धार्थ
५३७/१२१, पुरनिया (निकट रेलवे क्रॉसिंग)
अलीगंज, लखनऊ -२२६०२४
dusariparampara@gmail.com
मोबाइल 08604365535

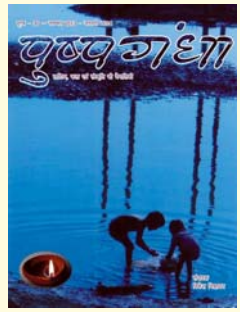

पुष्पगंधा

संपादक -विकेश निझावन
557 बी, सिविल लाइन्स
बस स्टॉप के सामने
अम्बाला सिटी 134003
हरियाणा

स्वागत : नई पत्रिका

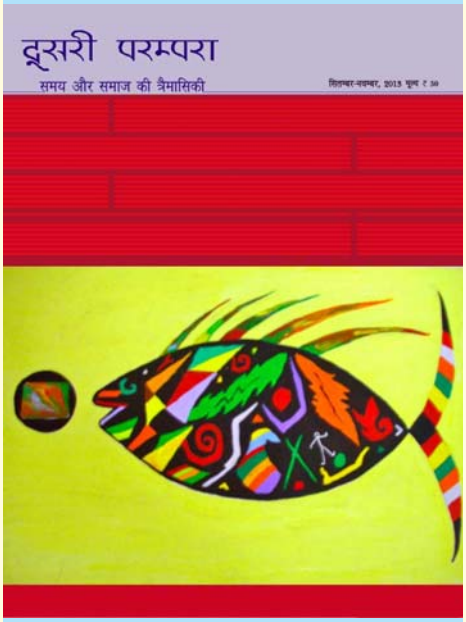

वरिष्ठ व्यंग्यकार तथा आलोचक सुशील सिद्धार्थ के सम्पादन में एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका 'दूसरी परम्परा' का प्रवेशांक सामने आया है। अपने नाम के अनुरूप पत्रिका ने दूसरी परम्परा पर चलने की ईमानदार कोशिश पहले ही अंक में की है। पत्रिका के प्रवेशांक का हिन्दी साहित्य जगत में उत्साह के साथ स्वागत किया गया है।

पत्रिका को लेकर सुशील सिद्धार्थ कहते हैं कि कई सालों से उनके मन में एक बात थी, कि क्या ऐसा नहीं हो सकता कि कोई पत्रिका सिर्फ़ साहित्यिक रचनाओं के लिए पढ़ी जाए, न कि विवादों, बहसों और व्यर्थ के बखेड़ों के लिए।

पत्रिका के प्रवेशांक में वरिष्ठ कथाकार तथा हंस के सम्पादक श्री राजेन्द्र यादव ने लिखा है कि सबसे पहले तो हमें 'दूसरी परम्परा' को परिभाषित करना पड़ेगा कि हमारा आशय किस क्षेत्र की दूसरी परम्परा से है। हमारा आशय रचनात्मक गद्य से है या पद्य से! आशा करता हूँ कि यह पत्रिका शेष पत्रिकाओं से अलग और महत्त्वपूर्ण हो। यह भी चाहता हूँ कि निजी संबंधों से ऊपर उठकर केवल रचनाशीलता से प्रतिबद्धता ही 'दूसरी परम्परा' का उद्देश्य बने।

'हिन्दी चेतना परिवार' भी इस नई पत्रिका का स्वागत करता है । **(पंकज सुबीर)**

पुस्तकें

अयन प्रकाशन

2013 सेट की कुछ पुस्तकें

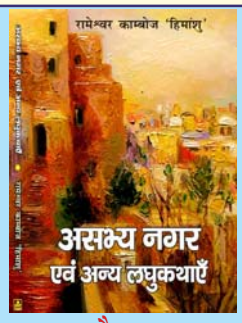

असभ्य नगर और अन्य लघुकथाएँ
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'
मूल्य:२०० रुपये

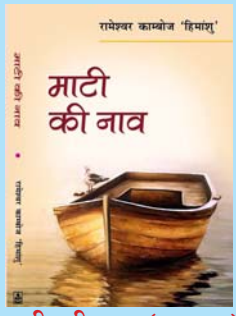

माटी की नाव (हाइकु)
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'
मूल्य:२२० रुपये

ख़्वाबों की खुशबू (हाइकु)
डॉ. हरदीप कौर सन्धु,
मूल्य: २२० रुपये

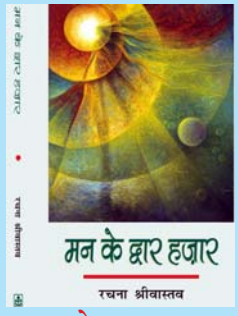

मन के द्वार हज़ार
(अवधी में अनूदित हाइकु)
अनुवादक: रचना श्रीवास्तव
मूल्य: १८० रुपये

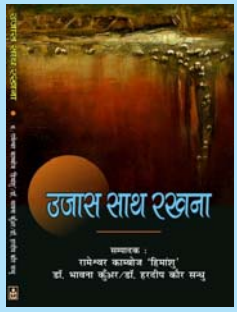

उजास साथ रखना
(३४ रचनाकार-१२१चोका)
सम्पादक: रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'
डॉ.भावना कुँअर, डॉ. हरदीप कौर सन्धु
मूल्य: २०० रुपये

1/20, महरौली, नई दिल्ली 110030
मोबाइल नं 09818988613
ayanprakashan@rediffmail.com

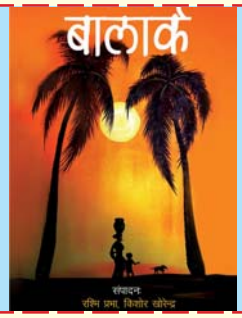

बालार्क
संपादन:
रश्मि प्रभा, किशोर खोरेन्द्र
प्रकाशक : हिन्द- युग्म प्रकाशन

चित्र काव्यशाला

चित्रकार :
अरविंद नारले

कमाल

क्या चित्र है कमाल,
बकरियों के हैं ऊँचे भाल,
स्कूटर पर चढ़कर खा रही अंगूर,
इन्हें देखकर शरमा जाए लंगूर।

इरा वर्मा (अमेरिका)

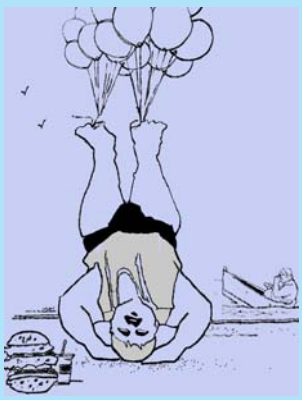

इस चित्र को देखकर आपके मन में कोई रचनात्मक पंक्तियाँ उमड़-घुमड़ रही हैं, तो देर किस बात की, तुरन्त ही काग़ज़ क़लम उठाइये और लिखिये। फिर हमें भेज दीजिये । हमारा पता है :

HINDI CHETNA
6 Larksmere Court,
Markham, Ontario, L3R 3R1,
e-mail :
hindichetna@yahoo.ca

विलोम चित्र काव्यशाला

इस चित्र में देख रहे हो, एक सुंदर बच्ची,
चित्र बनाने में मग्न हुई, लगती है यह कितनी अच्छी,
सर पर रिबन बंधा हुआ है, कहीं बिखर न जाएँ बाल,
तख्ती पर गड़ी हैं नज़रें, ब्रश हाथ में रखा संभाल,
छोटी उम्र में चित्रकारी का, लगा हुआ है इसको शौक,
फूली- फूली बंद गले की, तन पर पहने हुए फ्रॉक,
देखो कान में गले के ऊपर, लटक रहा है छोटा झुमका,
एक छोटी सी घंटी जैसा, बना है आकार जिसका,
ये भोली सी बच्ची, भला ! किस चीज़ का चित्र बनाएगी,
क्या छुपा है इसके मन में, जो कागज़ पर लाएगी,
छोटी सी है इसकी दुनिया, आस पड़ोस भी ना आना जाना,
जान पाई है अभी ममी डैडी, दादा दादी, नानी नाना
आड़े तिरछे लिख लेती है, पहली पुस्तक के वो अक्षर,
पर चित्र बनाने बैठ गयी है, हाथ में छोटा ब्रश पकड़कर,

चित्रकार :
अरविंद नारले

चित्र को उल्टा करके देखें

चित्र उलटा करके देखो, क्या इसके मन में समाया,
जो कागज़ पर चित्र बनकर सामने आया,
धीरे- धीरे आधा तिरछा, कागज़ पर ब्रश चलाकर,
एक पुरुष का भद्दा चित्र, रख दिया देखो बनाकर,
सरपर पगड़ी, दाढ़ी मूंछे, मोटा और नाटा सा शरीर,
वाह, भई इसने तो बना दी, अपने डैडी की तस्वीर ,
भले ही ये चित्र है भद्दा, पर डैडी के लिये है सुंदर,
इसे देख बच्ची के प्रति, प्यार उमड़ेगा दिल के अंदर।

तात्पर्य :

बच्चों की उम्र है कच्ची कुम्हार की जैसी मिट्टी,
जो भी लिखना इस पर लिख दो साफ़ पड़ी अक्ल की पट्टी,
जैसे एक छोटी सी बच्ची की छोटी सी दुनिया है परिवार,
उसके दिल में बसा हुआ है, मम्मी डैडी का ही प्यार,
जैसे - जैसे उम्र बढ़ेगी, वैसे - वैसे उसका संसार,
खार बो दो खार मिलेंगे, प्यार बो दोगे तो मिलेगा प्यार।

कविः
सुरेन्द्र पाठक

नेशनल बुक ट्रस्ट की पाँच पुस्तकों का लोकार्पण

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया दिल्ली एवं भाषा संस्कृति विभाग धर्मशाला के सहयोग से राष्ट्रीय पुस्तक सप्ताह के अवसर पर 20 नबम्बर को धर्मशाला के स्थानीय बचत भवन में पुस्तक लोकार्पण समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर ट्रस्ट की पाँच नई पुस्तकों का लोकार्पण भाषा संस्कृति विभाग, शिमला के निदेशक व सचिव डॉ. देवेन्द्र गुप्ता ने किया। इन पुस्तकों में डॉ. गौतम शर्मा व्यथित द्वारा लिखित पुस्तक हिमाचल के लोक गीत,चर्चित व्यंग्यकार प्रेम जनमेजय संकलित व्यंग्य रचनाएँ, बलराम की संकलित कहानियाँ, विद्यासागर नौटियाल की संकलित कहानियाँ, चंद्रकांता संकलित कहानियाँ प्रमुख थीं।

ब्रिटेन के हाउस ऑफ लॉर्डस में, 21 नवंबर 2013 को डॉ. पुष्पिता अवस्थी (नीदरलैंड) और डॉ. विजय मेहता (अमेरिका) को वातायन काव्य पुरस्कार २०१३ से सम्मानित किया गया।

पाठक ही महत्त्वपूर्ण है, वही आपकी कहानी को ज़िन्दा रखेगा- पंकज सुबीर

'प्रवासी हिन्दी साहित्य किसी भी तरह से मुख्यधारा के साहित्य से कमतर नहीं है। बेशक फ़िलहाल इसकी बहुत चर्चा नहीं हो रही है, मगर इस बात का इत्मिनान रखिये कि आपकी कहानियाँ पाठक पहचान रहे हैं। लेखक के लिये पाठक ही महत्त्वपूर्ण है, वही आपकी कहानी को ज़िन्दा रखेगा।' यह कहना था कथा यूके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय इन्दु शर्मा कथा सम्मान से अलंकृत सीहोर के कथाकार पंकज सुबीर का। वे अपने सम्मान के बाद लन्दन के हाउस ऑफ़ कॉमन्स में बोल रहे थे। उन्हें यह सम्मान सामयिक प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उनके कहानी संग्रह महुआ घटवारिन एवं अन्य कहानियाँ के लिये दिया गया। 19वाँ अंतर्राष्ट्रीय इन्दु शर्मा कथा सम्मान समारोह लन्दन के हाउस ऑफ़ कॉमन्स में सांसद विरेन्द्र शर्मा, सुश्री संगीता बहादुर (मंत्री-संस्कृति, भारतीय उच्चायोग), काउंसलर ज़किया ज़ुबैरी, कथा यू.के. के अध्यक्ष कैलाश बुधवार, महासचिव तेजेन्द्र शर्मा एवं भारतीय उच्चायोग की सुश्री पद्मजा की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर बर्मिंघम के डॉ कृष्ण कन्हैया को उनके वाणी प्रकाशन से प्रकाशित कविता संग्रह किताब ज़िन्दगी की के लिये पद्मानन्द साहित्य सम्मान से विभूषित किया गया। दोनों लेखकों को शॉल, श्रीफल, मानपत्र एवं स्मृतिचिन्ह भेंट किया गया।

सुनील गज्जाणी मानक उपाधि से अलंकृत

अखिल भारतीय हिंदी सेवी संस्थान इलाहाबाद द्वारा श्री सुनील गज्जाणी को वर्ष २०१३ की राष्ट्रभाषा गौरव की मानक उपाधि से अलंकृत किया गया।

वर्ष का चक्र देखते ही देखते पूरा हो जाता है, ठीक वैसे ही जैसे खेतों में किसान फसल के चक्र को पूरा होते हुए देखता है। बीज से अंकुर, अंकुर से पौधे और फिर पौधों से फसल। इस चक्र में ही जीवन का असली आनंद छिपा हुआ है।

विदेश की अच्छाइयों का प्रभाव देशवासियों पर क्यों नहीं पड़ता ?

दैनिक पंजाब केसरी, जालंधर मेरे पास हवाई डाक से पहुँचता है। ऑन लाइन दैनिक पत्र भी पढ़ती रहती हूँ। ऐसा महसूस होता है कि पितृसत्ता के निरंकुश व्यवहार के समाचार कम होने की बजाय बढ़ते ही जा रहे हैं। एक समाचार बताता है कि लुधियाना के एक ब्यूटी पॉर्लर में शादी के दिन दुल्हन का मेकअप करवा रही लड़की पर चिट्ठी देने के बहाने आए युवक ने तेज़ाब फेंक दिया; जिससे उसके साथ बैठीं चार सहेलियाँ भी झुलसी गईं। जिस लड़के ने तेज़ाब डाला, वह लड़की के भाई का दोस्त था और लड़की से प्यार करता था। लड़की उसे बहुत बार फटकार चुकी थी। दूसरे समाचार में फेसबुक पर दोस्ती का निवेदन अस्वीकार करने पर युवती के घर में घुसकर अस्वीकृति से आहत हुए युवक ने लड़की और उसकी माँ को चाकू मार कर घायल कर दिया। ऐसे किस्सों से समाचार पत्र भरे रहते हैं और तेज़ाब जैसा घातक केमिकल अभी तक आसानी से उपलब्ध हो रहा है। कहा नहीं जा सकता –कितनी और लड़कियाँ इसकी शिकार होंगी?

भूमण्डलीकरण से प्रभावित, इक्कीसवीं सदी का जागरूक भारतीय तेज़ाब को प्रतिबंधित नहीं करवा पाया। कारण स्पष्ट है– महिलाओं का शोषण और पुरुष –अहं की तुष्टि। महिला आयोग किन महिलाओं के लिए काम करते हैं! स्वदेश के शहरों का कल्चर और मॉल संस्कृति विदेशों को मात करते जा रहे हैं। तेज़ाब फेंकने की घटनाएँ भी शहरों में ही अधिकतर घटित हो रही हैं। विदेश की अच्छाइयों का प्रभाव देशवासियों पर क्यों नहीं पड़ता ? फ़ितूरी लोग तो यहाँ बहुत हैं; बलात्कार भी होता है और स्त्री का शोषण भी; पर उनके साथ सख्ती से निपटा जाता है । तेज़ाब जैसे केमिकल यहाँ जनता की पहुँच से बाहर हैं। स्त्री का जीवन यहाँ उतना ही कीमती समझा जाता है; जितना पुरुष का।

मित्रो ! जब हम भौतिकवादी संस्कृति में जीने लगते हैं, तो उसके दुष्परिणामों के लिए भी तैयार रहना पड़ता है। उनमें से एक है, संवेदना –विहीन होना। ऐसे घिनौने कार्य संवेदनाओं की कमी और अहं की अधिकता से मानसिक ग्रंथिओं में पैदा हुए विकार के कारण होते हैं। नारी को तुच्छ समझने की भावना मन में कहीं गहरे बैठी होती है। 'तुच्छ' ने इंकार कर दिया तो अहं पर सीधा प्रहार। तभी ऐसे कृत्यों को अंजाम दिया जाता है। सख्त क़ायदे– कानून ही इन दुष्परिणामों को रोक सकते हैं । प्रौद्योगिकी, औद्योगिकी और तकनीकी विकास तो देश ने कर लिया; लेकिन कानून का अनुशासन अभी तक नहीं हुआ; मानसिक विकृति अभी तक दूर नहीं हो सकी। किसी भी संस्कृति में ढलने से पहले उसके तंत्र और प्रणाली को देखना भी उतना ही महत्त्वपूर्ण होता है, जितना उसे अपनाना। मेरे पास दो देशों के अच्छे और बुरे दोनों पक्ष हैं;इसलिए निष्पक्ष कह सकती हूँ कि कहाँ हैं मेरा देश जहाँ 'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता' कहा जाता था। क्या उसे सिर्फ मंदिरों तक सीमित कर दिया गया है ? महिलाओं को भी सृष्टि में साँस लेने का उतना ही हक़ है; जितना पुरुष का। सफल जीवन के लिए यह सांस्कृतिक उदारता और मानसिक सन्तुलन बनाए रखना ज़रूरी है।

आपकी मित्र

सुधा ओम ढींगरा